ISSN NUMBER : 2455-9717
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
वर्ष : 4, अंक : 16
जनवरी-मार्च 2020
मूल्य 50 रुपये

शिवना साहित्यिकी

साल मुबारक!
अमृता प्रीतम

जैसे सोच की कंघी में से
एक दंदा टूट गया
जैसे समझ के कुर्ते का
एक चीथड़ा उड़ गया
जैसे आस्था की आँखों में
एक तिनका चुभ गया
नींद ने जैसे अपने हाथों में
सपने का जलता कोयला पकड़ लिया
नया साल कुछ ऐसे आया...

जैसे दिल के फ़िक़रे से
एक अक्षर बुझ गया
जैसे विश्वास के काग़ज़ पर
सियाही गिर गयी
जैसे समय के होंटो से
एक गहरी साँस निकल गयी
और आदमज़ात की आँखों में
जैसे एक आँसू भर आया
नया साल कुछ ऐसे आया...

जैसे इश्क़ की ज़बान पर
एक छाला उठ आया
सभ्यता की बाँहों में से
एक चूड़ी टूट गयी
इतिहास की अंगूठी में से
एक नीलम गिर गया
और जैसे धरती ने आसमान का
एक बड़ा उदास-सा ख़त पढ़ा
नया साल कुछ ऐसे आया...

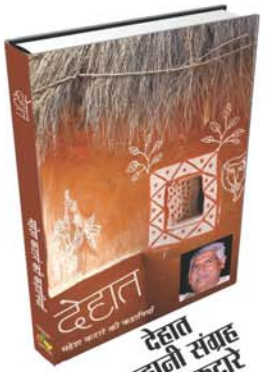

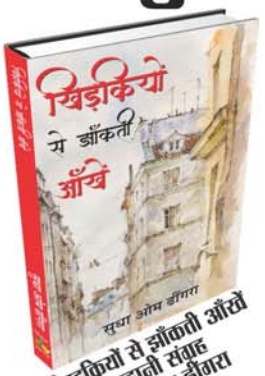

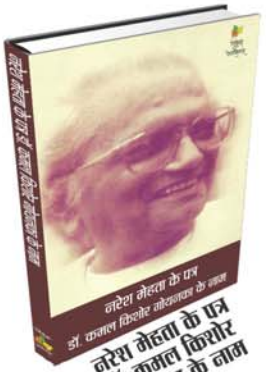

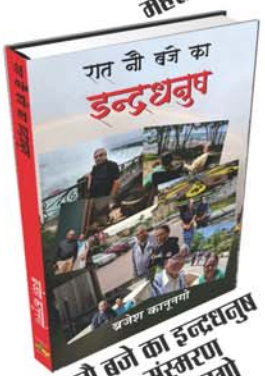

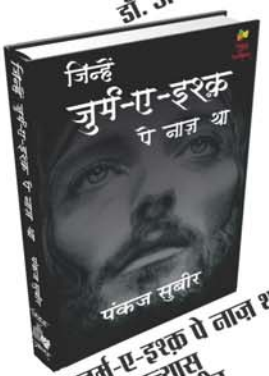

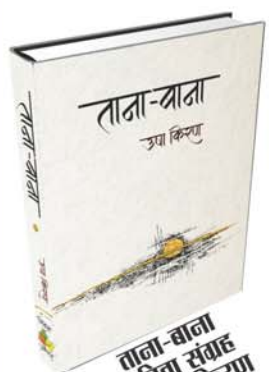

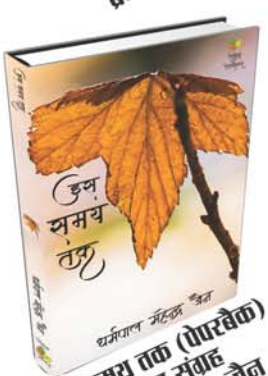

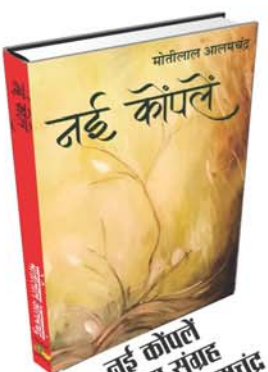

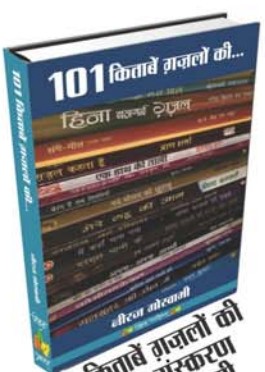

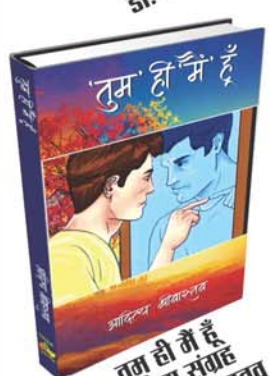

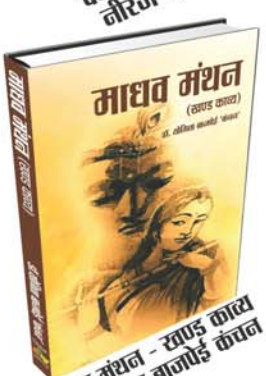

शिवना प्रकाशन - नई पुस्तकें
देह
उपन्यास
अचला नागर
देहात
कहानी संग्रह
महेश कटारे
नाच-गान
कहानी संग्रह
डॉ. उर्मिला शिरीष
खिड़कियों से झाँकती आँखें
कहानी संग्रह
सुधा ओम ढींगरा
नरेश मेहता के पत्र
डॉ. कमल किशोर
गोयनका के नाम
प्रेम की उम्र के चार पड़ाव
कविता संग्रह
मनीषा कुलश्रेष्ठ
रात नौ बजे का इन्द्रधनुष
यात्रा-संस्मरण
ब्रजेश कानूनगो
जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था
उपन्यास
पंकज सुबीर
प्रवास में आसपास
कहानी संग्रह
डॉ. हंसा दीप
पुकारती हैं स्मृतियाँ
कविता संग्रह
आनंद पचौरी
ताना-बाना
कविता संग्रह
डॉ. उषा किरण
इस समय तक (पेपरबैक)
कविता संग्रह
धर्मपाल महेन्द्र जैन
नई कोंपलें
कविता संग्रह
मोतीलाल आलमचंद्र
101 किताबें ग़ज़लों की
पेपरबैक संस्करण
नीरज गोस्वामी
हैश टैग ज़िंदगी
कविता संग्रह
श्याम चंदेले
तुम ही मैं हूँ
कविता संग्रह
आदित्य श्रीवास्तव
दिलफ़रेब
ग़ज़ल संग्रह
राजकुमार कोरी राज
मैं नास्तिक हूँ
उपन्यास
राजेश सोनवार
माधव मंथन - खण्ड काव्य
डॉ. योगिता बाजपेई कंचन
भूत भाई साहब
कहानी संग्रह
प्रियंका कौशल
शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर
amazon
http://www.amazon.in
flipkart.com
http://www.flipkart.com
Paytm
https://www.paytm.com
ebay
http://www.ebay.in
दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

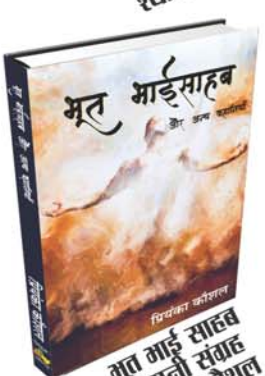

संरक्षक एवं
सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा

●

प्रबंध संपादक
नीरज गोस्वामी

●

संपादक
पंकज सुबीर

●

कार्यकारी संपादक
शहरयार

●

सह संपादक
पारुल सिंह

●

छायाकार
राजेन्द्र शर्मा

●

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी

●

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545
मोबाइल : 09806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivnasahityiki@gmail.com
ऑनलाइन 'शिवना प्रकाशन'
http://shivnaprakashan.blogspot.in
फेसबुक पर 'शिवना प्रकाशन'
https://facebook.com/shivna prakashan

●

एक प्रति : 50 रुपये,
(विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
1500 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)
बैंक खाते का विवरण : Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda, Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

शिवना साहित्यिकी
वर्ष : 4, अंक : 16
त्रैमासिक : जनवरी-मार्च 2020
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

आवरण कविता
अमृता प्रीतम

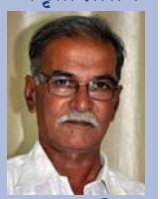
आवरण चित्र
राजेन्द्र शर्मा

इस अंक में

कुछ यूँ...
आवरण कविता / अमृता प्रीतम
संपादकीय / शहरयार / 4
व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 5
स्मृति शेष
स्वयं प्रकाश / वीरेन्द्र जैन / 6
एकाग्र
जयनंदन की कहानियाँ / डॉ. नीलोत्पल रमेश / 8
राकेश मिश्र की कविताएँ / डॉ. सीमा शर्मा / 16
पुस्तक समीक्षा
अयोध्या से गुजरात तक
भालचन्द्र जोशी / सुशांत सुप्रिय / 12
बाबाओं के देश में
सूर्यकांत नागर / कैलाश मंडलेकर / 14
नई कोंपलें
पारुल सिंह / मोतीलाल आलमचंद्र / 18
मंच पर उतरी कहानियाँ
अनिता रश्मि / कुमार संजय / 19
आईना किस काम का
अनीता रश्मि / जाबिर हुसैन / 20
हरिद्वार का हरि
गोविन्द सेन / महेश शर्मा / 21
बिन पूँजी का धंधा
दीपक गिरकर / अश्विनी कुमार दुबे / 23
एक पाती ऐसी भी
डॉ. ऋतु भनोट / कृष्णा अग्निहोत्री / 26
कोचिंग@कोटा
नवीन कुमार जैन / अरुण अर्णव खरे / 28
दोहों से दोहा ग़ज़लों तक
डॉ. मधुसूदन साहा / ज़हीर कुरेशी / 30
बेहतरीन व्यंग्य
अरुण अर्णव खरे / प्रभाशंकर उपाध्याय / 32
चलो ! अब आदमी बना जाए
अरुण अर्णव खरे / सतीश श्रीवास्तव 'नैतिक' / 33
इस ज़िन्दगी के उस पार
संदीप 'सरस' / राकेश शंकर भारती / 34
इस समय तक
डॉ. नीलोत्पल रमेश / धर्मपाल महेंद्र जैन / 36
कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न, कारण और निवारण
शैलेन्द्र शरण / शहरयार अमजद ख़ान / 37
पुस्तक चर्चा
ऋणानुबंध / सचिन तिवारी / डॉ. विमलेश शर्मा / 35
शोध आलेख
जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था
जुगेश कुमार गुप्ता, प्रतिभा सिंह, डॉ. रश्मि दुधे
लेखक : पंकज सुबीर / 39

संपादकीय

आँगन में बेर का पेड़

शहरयार

कभी कहा जाता था कि अगर दुश्मनों की संख्या बढ़ाना हो तो अपने आँगन में एक बेरी का पेड़ लगा लिया जाए। बेर का पेड़ होगा तो बेरों के पकने के समय पत्थर आएँगे और पत्थर आएँगे, तो ज़ाहिर सी बात है कि झगड़े होंगे, झगड़े होंगे तो दुश्मन बढ़ेंगे। अब तो ख़ैर बेर के पेड़ बस खेतों की मेड़ों पर ही कहीं-कहीं दिख जाते हैं। आँगन में तो अब कहीं नज़र नहीं आते। मगर बेर के पेड़ ने रूप बदल लिया है, और आज के समय में कहा जा सकता है कि एक प्रकाशन संस्थान खोलना भी एक प्रकार से बेर का पेड़ लगाना ही है। प्रकाशन संस्थान को चलाने का मतलब है कि रोज़ एक दुश्मन का बढ़ना। मज़े की बात यह है कि यहाँ दुश्मन दोनों ही कारणों से बढ़ते हैं, यदि आपने किसी की किताब नहीं छापी, तो दुश्मनी और अगर छाप दी तो भी। पिछले कुछ वर्षों में प्रचार के द्वारा प्रकाशक की छवि जिस प्रकार की बना दी गई है, उसके चलते कहीं न कहीं लेखक के मन में यह बात रहती है कि प्रकाशक तो बेईमान होता ही है। यदि गुणवत्ता के आधार पर प्रकाशक ने किसी पुस्तक को अस्वीकृत कर दिया, तो लेखक उसे दूसरा ही रूप देकर सोशल मीडिया पर प्रस्तुत कर देता है। इस प्रकार कि उस प्रचार के द्वारा प्रकाशक की छवि एक खलनायक की तरह नज़र आने लगती है। सोशल मीडिया एक इस प्रकार की अदालत है, जहाँ पर सिर्फ और सिर्फ फ़ैसले ही सुनाए जाते हैं, वहाँ कोई सुनवाई नहीं होती। आइए अब दूसरे पक्ष की बात करते हैं। यदि किसी लेखक की पुस्तक प्रकाशक द्वारा प्रकाशित कर दी गई है, तो अब दूसरा झगड़ा प्रारंभ हो जाता है। बहुत सारी शिकायतें सामने आने लगती हैं। सबसे प्रमुख मुद्दा होता है पुस्तक के प्रचार-प्रसार का। हर प्रकाशक के पास कुछ ऐसे प्रतिष्ठित लेखक होते हैं, जिनकी पुस्तकों की प्रतीक्षा समीक्षक और आलोचक से लेकर पत्रिकाओं के संपादक भी करते हैं। ज़ाहिर सी बात है कि ऐसे में उन लेखकों की पुस्तकें आते ही चर्चा में आ जाती हैं। इस चर्चा के पीछे असल में वह सुदीर्घ लेखन होता है, जो उन लेखकों ने पूर्व में किया है। हर प्रकाशक के पास कुछ लेखक ऐसे होते ही हैं। इस प्रकार की पुस्तकों के आते ही चर्चा में आ जाने के कारण एकदम नए लेखकों को कहीं न कहीं यह लगता है कि प्रकाशक द्वारा इन पुस्तकों को अतिरिक्त महत्त्व दिया जा रहा है। वे यह नहीं समझ पाते कि जिन लेखकों ने पिछले बीस से पच्चीस साल का समय जो साहित्य को दिया है, यह सब उसी के चलते हो रहा है। यदि नए लेखकों को भी यही सब कुछ चाहिए तो इतना इंतज़ार तो करना ही पड़ेगा। लेकिन दो मिनट में बन जाने वाले फ़ास्ट फ़ूड के समय में इतना इंतज़ार करना कोई नहीं चाहता। पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षाओं के प्रकाशन की एक प्रक्रिया है, जिसमें संपादक अपने ही समीक्षकों से पुस्तक की समीक्षा करवाते हैं और प्रकाशित करते हैं। इसमें प्रकाशक का कोई दखल नहीं होता, हाँ लेखक की अपनी छवि का ज़रूर होता है। इस प्रचार आधारित समय में लेखक अपनी कृति को स्थापित होने देने के लिए ज़रा भी इंतज़ार नहीं करना चाहता। उसे लगता है कि एक माह में ही उसकी किताब सब जगह छा जाए। इन दिनों तो कुछ शॉपिंग साइट्स पर किताबों की प्री बुकिंग भी होती है और कई किताबें रिलीज़ होने से पहले ही बेस्ट सेलर हो जाती हैं। यह कितना कड़वा सच है हमारे समय का कि एक चीज़ जो अभी आपके सामने भी नहीं आई है, वह पहले से ही सबसे ज़्यादा बिकने वाली चीज़ बन चुकी है। ख़ैर यह सब तो बाज़ार के सिद्धांत हैं कि पहले माँग पैदा करो और फिर उस माँग के हिसाब से वस्तु को सामने ला दो। हालाँकि इस प्री बुकिंग के पीछे क्या खेला होता है और प्री बुकिंग के द्वारा किस प्रकार शॉपिंग साइट्स पर बेस्ट सेलर बनाया जाता है, वह खेल कम से कम वह लोग तो जानते ही हैं, जो पीछे की बातों को जानते हैं। मगर यह जो कुहासा है यह नए लेखकों को भ्रम में डाल देता है। और यही कारण है कि अक्सर सारा दोष प्रकाशक पर ही डाल दिया जाता है। इसीलिए मैंने कहा कि प्रकाशक होना बेर के पेड़ को अपने आँगन में लगाने जैसा है। और यह तो आप तो जानते ही हैं कि बेर का एक पेड़ तो मैं भी अपने आँगन में लगाए बैठा ही हूँ। **आपका ही**

शहरयार

शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.
466001, मोबाइल : 9806162184
ईमेल : shaharyarcj@gmail.com

व्यंग्य-चित्र

काजल कुमार

ईमेल : kajalkumar@comic.com

स्मृति शेष
जितने वज़नदार उतने ही विनम्र थे स्वयं प्रकाश

वीरेन्द्र जैन

मैं लम्बे समय तक कहानियों का नियमित पाठक रहा हूँ जिसका शौक कमलेश्वर के सम्पादन के दौर में निकलने वाली सारिका से लगा था। सारिका के समानांतर कथा आन्दोलन के दौर में जो कहानियाँ लिखी गयीं, उनके बारे में कहा जा सकता है कि अगर प्रेमचन्द आज लिख रहे होते, तो वैसी ही यथार्थवादी कहानियाँ लिखते। मुझे याद नहीं कि मैं कब किस कहानी को पढ़ कर स्वयं प्रकाश का प्रशंसक बन गया, पर उनका नाम मेरे लिए ऐसा ब्रांड बन चुका था जिसे किसी पत्रिका में देख कर मैं सबसे पहले उसी कहानी को पढता था, और उन्होंने कभी निराश नहीं किया। सारिका के अलावा अनेक लघु पत्रिकाओं में उनकी कहानियाँ मिल जाती थीं, जिनमें सव्यसाची जी द्वारा सम्पादित उत्तरार्ध (उत्तरगाथा), ज्ञानरंजन जी के सम्पादन में निकलने वाली पहल, कमलाप्रसाद जी द्वारा सम्पादित वसुधा, से रा यात्री द्वारा सम्पादित वर्तमान साहित्य आदि तो थी हीं, धर्मयुग और हंस में भी पढ़ने को मिल जाती थीं। वैसे उनकी कहानियाँ हिन्दी की सभी लघु और बड़ी पत्रिकाओं में छपती रहीं हैं। मेरे पढ़ने की सीमा थी, उनके छपने की कोई सीमा नहीं थी।

उनसे पहली मुलाकात भारत भवन के किसी कार्यक्रम में हुई थी जिसमें वे आमंत्रित थे और बगल में एक थैला दबाये हुये सीढ़ियाँ उतर रहे थे। थैला उस रैग्ज़ीन का बना था जिसे आमतौर पर रोडवेज़ बसों के कंडैक्टर-ड्राइवर सीट पर चढ़ी हुई, गहरे हरे से रंग की रेग्ज़ीन से बनवा लेते रहे हैं। उनकी इस सादगी भरी पहचान की चर्चा कभी श्री राज नारायण बोहरे और प्रो. के बी एल पांडेजी कर चुके थे। आमंत्रितों में उनका नाम था इसलिए थैला देख कर ही मैंने पहचान लिया था। मैंने पुष्टि करने के अन्दाज़ में पूछा था- स्वयं प्रकाश जी? उन्होंने बिन मुस्कराये या पहचाने जाने की खुशी के, विनम्र सहमति में सिर हिलाया, और पूछा आप? मैंने अपना नाम बताया और कहानी उपन्यास के क्षेत्र में ग़लतफ़हमी से बचाने के लिए कहा कि मैं दतिया वाला हूँ, डूब वाला नहीं। वे बोले कि डूब वालों को मैं पहचानता हूँ और फिर गत महीने हंस में किसी कहानी पर छपी मेरी पत्र प्रतिक्रिया की चर्चा की व प्रशंसा करते हुए कहा कि वह संतुलित टिप्पणी थी। मैं धन्य हो गया था और लगा था कि छोटे-छोटे प्रयास भी बेकार नहीं जाते। बाद में राजेन्द्र यादव जी से भी मेरी इस बात पर सहमति बनी थी कि मैं कहानियों पर टिप्पणियाँ ही लिखा करूँगा और मैंने अनेक वर्षों तक हंस में कहानियों पर पत्र, टिप्पणियाँ लिखीं, जिसे मैं पाठकीय समीक्षा मानता रहा।

दूसरी मुलाकात इस मुलाकात के एकाध वर्ष के अंतराल में ही हुई थी जब वे वनमाली पुरस्कार ग्रहण करने आये थे। इस अवसर पर उनके द्वारा कही गयी बातों का मुझ पर बहुत गहरा असर हुआ था। इसमें उन्होंने कहा था कि ''जूलियस फ्यूचक के अनुसार लेखक तो

वीरेन्द्र जैन, 2/1 शालीमार स्टर्लिंग, रायसेन रोड, अप्सरा टाकीज के पास, भोपाल, म.प्र. 462023 मोबाइल : 9425674629
ईमेल : j_virendra@yahoo.com

जनता का जासूस होता है जिसे हर अच्छी-बुरी जगह जाकर जानकारी एकत्रित करना होती है, इसलिए वह कथित सामाजिक नैतिकिता की परवाह में किसी जगह प्रवेश से खुद को रोक नहीं सकता। उसे चोर, उचक्कों, सेठों और शराबियों, सबके बीच जाना पड़ेगा। मैंने अच्छा कामरेड दिखने की कोशिश में अपनी अज्ञानता में भूल कर दी कि बहुत लम्बे समय तक किसी धर्मस्थल में नहीं गया। अब मुझे पता ही नहीं कि मन्दिर में क्या क्या बदमाशियाँ चल रही हैं या वहाँ का कार्य व्यवहार कैसे चलता है''।

2001 में मैं पुनः भोपाल आकर रहने लगा व उसके कुछ ही वर्ष बाद स्वयं प्रकाश जी भी सेवा निवृत्त होकर भोपाल रहने लगे। मेरे एक साहित्यकार मित्र जब्बार ढाकवाला आई ए एस थे और वे भी स्वयं प्रकाश जी के लेखन को बहुत पसन्द करते थे। उनके पास समुचित संसाधन थे किंतु वे बड़े पद के कारण घिर आने वाले अयोग्य व चापलूस साहित्यकारों से दूर भी रहना चाहते थे, इसलिए उन्होंने एक छोटा सा ग्रुप बना लिया था जो किसी न किसी बहाने लगभग साप्ताहिक रूप से मिल बैठ लेता था। इसमें ढाकवाला दम्पति के अलावा डॉ. शिरीष शर्मा, उर्मिला शिरीष, डॉ, विजय अग्रवाल प्रीतबाला अग्रवाल, आदि तो थे व अवसर अनुकूल आमंत्रितों में स्वयं प्रकाशजी, गोबिन्द मिश्र, डॉ. बशीर बद्र, डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी, अंजनी चौहान, श्रीकांत आप्टे, मुकेश वर्मा, बनाफर चन्द्र आदि आदि भी होते थे। बाद में व्यापक स्तर तक चलने वाले स्पन्दन पुरस्कारों की शृंखला का विचार भी इसी ग्रुप के विचार-मंथन से निकला था। ढाकवाला दम्पति बाहर से आने वाले प्रमुख व चर्चित साहित्यकारों की मेज़बानी करने में प्रसन्नता महसूस करते थे। मैं स्थायी आमंत्रित था इसलिए मुझे अनेक ऐसे लोगों से निजी तौर पर मिलने का मौका मिला जिनसे मैं इतनी निकटता से अन्यथा नहीं मिल पाता। इसी मिलन में हम लोग जन्मदिन मनाने की कोशिश भी करते थे और स्वयं प्रकाश जी का साठवाँ जन्मदिन भी मनाया था जिसमें उनसे कुछ बेहतरीन कहानियाँ सुनी थीं। इस अवसर पर एक रोचक प्रसंग यह हुआ कि जब वे बाहर जूते उतारने लगे तो मौसम को देखते हुए मैंने कहा कि पहिने आइए, आजकल तो सभी घरों में चलते हैं। स्वयं प्रकाशजी ने कहा कि तुम व्यंग्यकार लोग किसी को नहीं छोड़ते, कि तभी जब्बार ने कहा कि तुम्हें कैसे पता कि आज मेरा और तन्नू जी (उनकी पत्नी) का झगड़ा हुआ है। उनका जन्मदिन ठहाकों से ही शुरू हुआ था। उनकी बेटी की शादी में लड़के वालों ने मैरिज गार्डन के बाहर बैनर लगवा दिया था 'भटनागर परिवार आपका स्वागत करता है'। मैंने मज़ाक में उनसे कहा कि मुझे पता नहीं था कि आप भटनागर हैं, तो वे धीरे से बोले कि मुझे भी खुद पता नहीं था। फिर इतने ज़ोर से ठहाका लगा कि आसपास लोग देखने लगे।

वे जितने बड़े लेखक थे उतने ही सादगीपसन्द और विनम्र थे। मुझे दूर-दूर तक हुये अपने बार बार ट्रांसफ़रों के कारण अनेक लेखकों से मिलने का मौका मिला है जो अधिक से अधिक समय अपने बारे में ही बात करना पसन्द करते हैं या अपनी बातचीत में वे बार-बार 'सुन्दर वेषभूषा' में उपस्थित हो जाते हैं। स्वयंप्रकाश जी को मैंने कभी अपने बारे में बात करते हुए या अनावश्यक रूप से खुद को केन्द्र में लाते नहीं देखा। एक बार एक स्थानीय पत्रिका के नामी सम्पादक ने जनसत्ता में प्रकाशित उनके एक लेख को बिना पूछे अपनी पत्रिका में छाप लिया। मैंने फ़ोन करके उनसे जानकारी होने के बारे में पूछा तो उन्होंने इंकार कर दिया, बोले जनसत्ता अकेला अख़बार है जो अपनी प्रकाशित सामग्री पर कॉपीराइट रखता है और इस आशय का नोट अपनी प्रिंट लाइन में लिखता है। मैंने उन्हें पत्रिका का अंक उपलब्ध करवा दिया किंतु उन्होंने उन्हें फ़ोन तक नहीं किया। दिल्ली के एक प्रकाशक मेरे घर आकर रुकते थे और चाहते थे कि मैं उन्हें भोपाल के लेखकों से मिलवाऊँ। मैंने यह काम किया भी और अन्य लोगों के अलावा उन्हें स्वयंप्रकाश जी से भी मिलवाया था। मेरे अनुरोध पर उनको एक किताब भी देने का वादा किया था, बाद में उनके अनुभव उस प्रकाशक के बारे में अच्छे नहीं रहे। पर उस प्रकाशक से मेरे अनुभव भी कहाँ अच्छे रहे थे!

उनके उपन्यास 'ईंधन' पर मैंने पाठक मंच के लिए समीक्षा लिखी तो उसे लगे हाथ छपने के लिए भी भेज दी, जिसे लोकमत समाचार नागपुर ने तुरंत छाप दी, जो शायद पहली समीक्षा थी। कुछ दिनों बाद मिलने पर मैंने उनकी प्रतिक्रिया जानना चाही तो बोले 'अरे तुम्हारी समीक्षा थी, मैं तो दिल्ली वाले वीरेन्द्र जैन को पत्र लिखने वाला था।' उनकी बीमारी की ख़बर जब कुछ देर से मुझे मिली तो मैंने फ़ोन कर पूछा, किंतु उन्होंने कहा कि मैं बिल्कुल ठीक हूँ, कोई बात नहीं। बात बदल कर वे दूसरी बातें करते रहे। जबकि सच यह था कि उन्हें ऐसी बीमारी थी जो आम लोगों को होने वाली सामान्य बीमारी से बिल्कुल अलग थी। उनका हीमोग्लोबिन ख़तरनाक रूप से बढ़ जाता था। डायलिसिस के अलावा डॉक्टरों के पास कोई इलाज नहीं था।

पिछले दिनों जब उन्हें म.प्र. सरकार का शिखर सम्मान घोषित हुआ था तब मुँह से बेसाख़्ता निकला था- बहुत सही फ़ैसला। वैसे पुरस्कार/ सम्मान उन्हें पहले भी बहुत मिल चुके थे, जिनमें से कोई भी उनके पाठकों द्वारा उनकी कहानियों, उपन्यासों की बेपनाह पसन्दगी से बड़ा नहीं था। आमजन की कहानियों को उन्हीं की भाषा में कहते हुए भी वे जिस विषय को उठाते थे उसमें ताज़गी होती थी, वह अभूतपूर्व होता था। कथा इस तरह से आगे बढ़ती थी जैसे वीडियोग्राफी की जा रही हो, बनावट, बुनाहट बिल्कुल भी न हो। उनके कथानकों में झंडे, बैनर, नारे कहीं नहीं दिखते थे पर फिर भी वे वह बात कह जाते थे जिसे दूसरे अनेक लेखक उक्त प्रतीकों के बिना नहीं कह पाते।

विभिन्न सामाजिक विषयों पर लिखे गये उनके लेखों का संग्रह 'रंगशाला में दोपहर' को पढ़ने के बाद मैंने भी अपने बिखरे-बिखरे विचारों को लेखबद्ध किया जो विभिन्न समय पर विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुये, अन्यथा वे केवल निजी बातचीत का विषय होकर रह जाते। उनकी अलग-अलग कहानियों के गुणों पर बहुत सारी बातें की जा सकती हैं, पर अभी नहीं।

उन्हें पूरे दिल से श्रद्धांजलि। उनका साथ, उनकी कहानियाँ व उनके पात्र जीवन भर साथ रहेंगे।

000

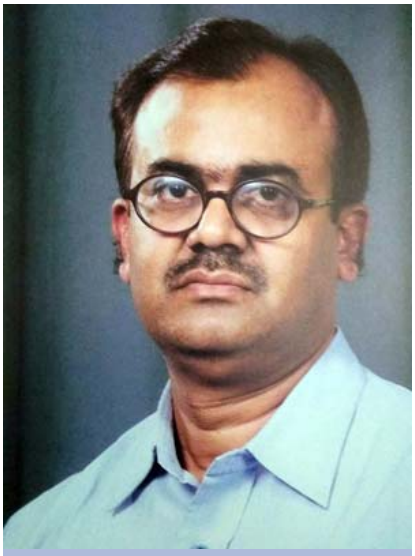

एकाग्र
जयनंदन की कहानियाँ

सीमक्षक : डॉ. नीलोत्पल रमेश

नीलोत्पल रमेश, पुराना शिव मंदिर, बुध बाज़ार, गिद्दी - ए, जिला-हजारीबाग, झारखण्ड- 829108, मोबाइल : 9931117537, 8709791120
ईमेल : neelotpalramesh@gmail.com

हिन्दी कहानी साहित्य में जयनंदन एक जाना-पहचाना नाम है। इनके अब तक बारह कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें 175 के आसपास कहानियाँ संकलित हैं। ये कहानियाँ कहीं न कहीं देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर प्रशंसित हो चुकी हैं। इनके कहानी-संग्रह हैं 'सन्नाटा भंग', 'विश्व बाज़ार का ऊँट', 'एक अकेले गान्ही जी', 'कस्तूरी पहचानो वत्स', 'दाल नहीं गलेगी अब', 'घर फूँक तमाशा', 'सूखते स्रोत', 'गुहार', 'गाँव की सिसकियाँ', 'भितरघात', 'सेराज बैंड बाजा' तथा 'गोड़पोछना'। इसके साथ ही इनमें से चुनी हुई कहानियों के प्रतिनिधि संकलन - 'मेरी प्रिय कथाएँ', 'मेरी प्रिय कहानियाँ', 'संकलित कहानियाँ', 'चुनी हुई कहानियाँ', 'चुनिंदा कहानियाँ' भी प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी कहानियाँ भोगे हुए यथार्थ का बोध कराती हुई सामाजिक सरोकार के गंभीर पहलुओं को रेखांकित करती हैं। इन्हें पढ़ते हुए लगता है कि ये कहानियाँ लेखक के आसपास ही घटित हुई हैं, जिन्हें एक सर्जक कमेंटेटर की तरह पुनर्सृजन करके आँखों देखा हाल प्रस्तुत कर दिया है। इनकी कहानियों का विषय गाँव है, जहाँ से लेखक की स्मृतियाँ जुड़ी हैं, फिर कार्य-स्थल हैं, जहाँ लेखक वर्षों एक कामगार के तौर पर सेवारत रहे। जहाँ-जहाँ विसंगतियों और अन्तर्विरोधों पर उनकी पैनी नज़र गई हैं, वहाँ की समस्याएँ और त्रासदियाँ जीवंतता से चित्रण के कैनवास पर उतर आई हैं। जिस औद्योगिक शहर से लेखक का वास्ता रहा है, वहाँ के मज़दूरों के दुख-दर्द और सिसकियों के करुण स्वर कराह की तरह इनकी कहानियों में समाहित होते दिखाई पड़ते हैं। इसके अलावा भी लेखक की सचेत नज़रें घर-परिवार, पास-पड़ोस, ऑफिस-शहर की विडम्बनाओं को कैमरे की तरह अपनी गिरफ़्त में ले लेती हैं।

धर्मयुग जैसी पत्रिका में प्रकाशित अपनी कहानी 'बदरी मैया' में एक विधवा, वृद्ध औरत के साथ उसके कलयुगी बेटों के निर्मम सलूक का बेधड़क बयान दर्ज है। बदरी मैया अपने पति की मृत्यु के बाद अपनी बेटी बबनी के साथ बेटों का भी पालन-पोषण करती हुई उन्हें किसी चीज़ की कमी होने नहीं देती। ये बेटे बड़े होकर अपनी बहन की शादी जैसे-तैसे

एक ग़रीब घर में निपटा देते हैं। तमाम सुखों और नाज़ों में पली बबनी को कष्टकारक अभावों और मुश्किलों में रहने के लिए मजबूर हो जाना पड़ता है। मैया अपनी बेटी को कुछ मदद पहुँचाना चाहती है तो ऐसा करना बेटों और बहुओं पर नागवार गुज़र जाता है। ऐसे में वह लुका-छिपाकर कुछ देना चाहती है तो वे उसका इस तरह पर्दाफाश करके अपमानित कर देते हैं जैसे बहुत बड़ी चोरी पकड़ ली हो। मैया को लगता है कि इस घर में अपने बेटों-बहुओं के साथ अब आगे गुज़र करना मुश्किल है। वह अपने भाई के साथ नैहर में जाकर रहने का फ़ैसला कर लेती है। जाते-जाते अपना अंचरा फैलाकर बेटों से कहती है कि लो बेटा, मेरी तलाशी ले लो। इस घर में हम भैया का दिया कपड़ा पहनकर आए थे और आज उन्हीं का दिया कपड़ा पहनकर वापस जा रहे हैं। उन्हें अशीषते हुए कहती है कि भगवान तुम लोगन को सुखी रखे। बदरी मैया के बूढ़े भाई अपनी बहन की हालत पर फफक पड़ते हैं। उनके ध्यान में आता है कि बहनोई मरे थे तब भी इतनी तकलीफ़ नहीं हुई थी उन्हें। यह कहानी बदले हुए समाज की नब्ज पर उँगली रखकर पाठकों को भावुक बनाकर बेचैन कर देती है।

''टेढ़ी उँगली और घी'' तथा ''माफिया सरदार'' कहानी शहरों में वर्चस्व की लड़ाई में हो रही हत्याओं का जीवंतता से खुलासा करती है। टेढ़ी उँगली और घी में बिल्टू राम बोबोंगा और माफिया सरदार में अफज़ल मियाँ का चरित्र अपराधिक पृष्ठभूमि में निर्मित हुआ है जो सिर्फ हत्या करके ही समाधान का रास्ता तलाशना चाहते हैं।

'टेढ़ी उँगली और घी' कहानी की नायिका रेशमी बिल्टू से घृणा करती है लेकिन परिस्थिति और समय के बदलाव ने उसके मन में सहानुभूति पैदा कर दी और धीरे-धीरे वह उसके नज़दीक आने लग गई। लेकिन बिल्टू को पता है कि वह सहपाठी रह चुके प्रेरित को चाहती है। वह उसी से प्रेम की ओर उन्मुख रहने की सलाह देता है। यह कहानी प्रेम के साथ राजनीति में भी आने के प्रसंग को बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत करती है।

'माफिया सरदार' एक ईमानदार ऑफिसर वारिस और शहर का दबंग व आतंक का पर्याय अफज़ल मियाँ के द्वंद्व को उद्घाटित करती है। अंततः ईमानदार ऑफ़िसर की हार होती है और अफज़ल मियाँ राजनीतिक प्रभाव में आकर नेता बन जाता है।

अप्रकट कहानी के माध्यम से कथाकार जयनंदन ने पति-पत्नी के बीच बच्चों की मजबूत कड़ी के रूप में समन्वयकारी भूमिका को बहुत बारीकी से चित्रित किया है। कहानी में बेटी अपने पिता को संबोधित करते हुए उनके संबंधों में आने वाले उतार-चढ़ाव को उद्घाटित करती है। आज के समाज में ऐसी स्थितियाँ प्रायः देखने को मिल जाती हैं कि पति-पत्नी के बीच थोड़ी सी भी अनबन हुई नहीं कि दोनों दो ध्रुवों में रास्ता अपना लेते हैं। लेकिन अप्रकट में ऐसा नहीं होता है। इसमें दोनों का रास्ता अलग-अलग है, फिर भी दोनों एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। ऐसा प्रेम जो अप्रकट है, लेकिन प्रगाढ़ है। बेटी कहती है कि मैं यही मान बैठी थी कि पति-पत्नी के संबंध शायद इसी तरह होते हैं -अपनी-अपनी सीमा सँभालते हुए दो दुश्मन की तरह। यह अलग बात है कि मम्मी अगर पाकिस्तान रही....बेमतलब, बेतुकी और विवेकहीन फायरिंग करने वाली तो आप हिन्दुस्तान रहे....ज़रा संयमित, धीर-गंभीर और चतुर....जवाबी गोली-बारी तो आपकी तरफ से भी हुई ही न। बेटी के द्वारा पिता को यह कहने पर कि ''आप किसी दूसरी महिला को अपने जीवन में प्रवेश दे दें'' के जवाब में पिता एक दार्शनिक मुद्रा में कहते हैं - जैसे धूप और पानी के संसर्ग में रहने वाली कोई भी ख़ाली ज़मीन, ख़ाली नहीं रहती अगर वह बंजर नहीं है। बिना उगाए उग आता है उसमें कोई न कोई पौधा या घास। वैसा ही व्यक्ति के साथ भी होता है....उसे भी किसी के सान्निध्य व आत्मीयता की तलब रहती है, जो कभी न कभी पूरी हो ही जाती है। यह कहानी बदलते दाम्पत्य परिवेश को एक नए कोण से परिभाषित करने में काफी सफल रही है।

'अवांछित बेटयाँ' कहानी के माध्यम से कथाकार ने लगातार मादा भ्रूणों की हो रही हत्या की ओर ध्यान दिलाया है। अंबर और शाखा पति-पत्नी हैं। शाखा की मानसिकता ऐसी है कि वह सिर्फ और सिर्फ बेटियों की माँ बनना चाहती है, लेकिन उसका पति अंबर ऐसा नहीं चाहता। वह अपनी बहनों के विवाह के समय से बेटियों के कारण घर में उत्पन्न भयावह स्थितियों से वाक़िफ़ है। वह एक बेटी हो जाने के बाद बेटा चाहता है, यही कारण है कि पत्नी की कोख में आने वाले मादा भ्रूणों की वह लगातार हत्या करवाता चला जाता है। अंत में डॉक्टर भी उससे झूठ बोल देता है और इसी ग़फ़लत में दूसरी बेटी भी जन्म ले लेती है। दूसरी तरफ जितनी मादा भ्रूणों की हत्या होती है, शाखा उन सबके नाम पर नामकरण करके गुड़िया बनाती जाती है और उन्हें सहेज कर रख लेती है। उन सबकी हत्या के अपराध बोध से वह खुद को लहूलुहान महसूस करती है। वह कहती है - ''मुझे माफ कर देना मेरी अजन्मी बच्चियों, तुम सबको कोख में ही मार देने के जुर्म में पति और समाज के साथ मैं भी साझीदार हूँ। चाहती थी कि तुम सबकी और तुम्हारे जैसी अनेकों की माँ बनकर मैं फलों से लदा एक विशाल छतनार पेड़ बन जाऊँ। पति नामधारी पुरुष के बिना गर्भ-धारण करना और भरण-पोषण करना संभव होता और उसमें समाज का कोई दखल नहीं होता तो मैं अपनी दसों इन्द्रियों की कसम खाकर कहती हूँ, मैं अभी से सिर्फ और सिर्फ लड़कियों को जन्म देती, जिनकी संख्या कम से कम दो दर्जन होती....बल्कि इससे भी ज़्यादा कर पाती तो मुझे और ज़्यादा मज़ा आता।'' यह कथन सिर्फ कथा-नायिका शाखा का नहीं बल्कि संपूर्ण स्त्री जाति का है। यह कहानी बेटियों को दोयम समझने की मानसिकता को चुनौती देती हुई एक नया आकाश रचती है।

'मिसफिट' कहानी के माध्यम से कथाकार ने समरथ और संधि के हवाले से जैसे अपनी ही कहानी कह दी है। समरथ एक राष्ट्रीय स्तर का कथाकार है। उसकी कहानियाँ देश की सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। लेकिन उसके कार्य-स्थल पर उससे सभी अनभिज्ञ हैं। संधि को जब कारखाने की हिन्दी गृह पत्रिकाओं के प्रकाशन की ज़िम्मेवारी मिलती है तो वह हिन्दी के रिसालों में रुचि लेने लगती है। इसी क्रम में उसे समरथ के बारे में जानकारी हो जाती है। वह उससे इतना प्रभावित हो उठती है कि उसके लोहा छीलने वाले मशीन-ऑपरेटर के काम से

मुक्ति दिलवाकर अपने जन-संपर्क विभाग में स्थानांतरित करवाकर ले आती है। वह चाहती है कि उसकी लेखन-प्रतिभा का स्पर्श पाकर कंपनी की पत्रिकाओं का स्तर बेहतर हो जाए। शाखा के प्रयासों को विभागीय दाँव-पेंचों से झटके पर झटके लगने लगते हैं। कथाकार ने समरथ की बेबसी और विभाग के सौतेलेपन से ग्रस्त कार्यशैली का परत दर परत जो चित्र खींचा है, उससे कॉरपोरेट घराने की नग्नता खुलकर सामने आ जाती है।

'भोमहा' कहानी में कथाकार ने गाँव के एक भोले-भाले व निहायत शरीफ आदमी भोमहा की पत्नी पुनियाँ देवी की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा के कुत्सित कारनामे की पोल-पट्टी उधेड़ी है। नेता बनने की चाह में वह पथभ्रष्ट और कुलच्छिनी बनती हुई एक कूड़ेदान में तब्दील हो जाती है। अपने कठपुतले की तरह के पति पर अपनी दबंगई थोपते हुए उसे अपना ग़ुलाम सा बना लेती है। बहुचर्चित हो गई पत्नी से जुड़े रहने की जब भोमहा की सारी कोशिशें क्रूरता की भेंट चढ़ जाती हैं तो बग़ावत स्वरूप उसके अंदर का स्त्री-प्रेम घर की नौकरानी चंपिया के साथ शेष जीवन जीने के लिए बाध्य कर देता है। इस कहानी के जरिए कथाकार जयनंदन ने स्त्री-देह को कई कोणों से देखने की कोशिश की है। पुनियाँ के रूप में एक नए स्त्री-चरित्र का उदय दिखाकर समाज के एक अंधेरे और अछूते क्षेत्र पर रोशनी डाली गई है।

'टापू' कहानी में कथाकार ने बिजली विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार को उजागर किया है। कथानायक नियम-क़ायदे से अपने घर में बिजली का कनेक्शन लेना चाहता है, लेकिन उसे कई साल लग जाते हैं, फिर भी कनेक्शन नहीं मिलता। अपने पति के उसूलों को नज़रअंदाज कर पत्नी मुख़ालफ़त करती हुई पहल करती है और विभाग के लोगों को घूस देकर कुछ ही दिनों में कनेक्शन प्राप्त कर लेती है। यह कहानी हमारी व्यवस्था में व्याप्त सड़ाँध का पर्दाफाश करती है। कथानायक हुकुमदेव की पत्नी रुक्मी रिश्वत की मदद से अपने टापूपन की स्थिति से तो उबर जाती है लेकिन नायक के टापूपन की स्थिति दयनीय बनकर और गहरा जाती है।

'चीयर अप कोला ब्लूम 96' के माध्यम से कथाकार ने एक शहर को महानगर में परिवर्तित होते हुए दिखाया है। साकेत नाम का एक लड़का एक साल का मीडिया कोर्स कर वापस अपने शहर लौटने के बाद ''संवाहिका एंड डिलाइट जींस प्रज़ेंट्स चीयर अप कोला ब्लूम 96....इंटर कॉलेज फैशन शो एंड कंटेस्ट'' कार्यक्रम करने की योजना बना डालता है। इस काम में उसके रंगकर्मी पापा और उसकी नाट्य-मंडली के सदस्य साथ नहीं देना चाहते है। वह उन्हें कन्विंस करने के तहत कहता है कि इस कार्यक्रम से संस्था के लिए एक बड़ी राशि जुटाई जा सकेगी। उसकी और उसका साथ दे रहे अन्य युवाओं की ज़िद और जोश को देखते हुए अंततः नाट्य-मंडली के लोग उसे अपनी संस्था का बैनर लेने की अनुमति दे देते हैं। साकेत का यह कार्यक्रम बहुत बड़ी सफलता दर्ज करते हुए संपन्न हो जाता है। इससे युवाओं में उसका क्रेज़ बढ़ जाता है। इस अपसंस्कृति के बढ़ते प्रभाव से अब ऐसी चर्चा होने लगती है कि ज़माना ऐसे ही शोर और अंग-प्रदर्शन वाले कार्यक्रमों का हो गया है....इस माहौल में अब रंगकर्म नहीं हो सकता। मूल्यों से जुड़ा एक रंगकर्मी अनंग अपना दृढ़-निश्चय प्रदर्शित करते हुए घोषित करता है कि इस माहौल में भी वह नाटक करता रहेगा, कोई साथ नहीं देगा तो अकेले ही करेगा।

'ऑफ़िसर' कहानी में जयनंदन ने डीपी और जयंत की मज़बूत दोस्ती को बिखरते हुए दिखाया है। जब तक जयंत कहानीकार और डीपी कवि रहता है तब तक दोनों में दोस्ती कायम रहती है। लेकिन जैसे ही ऑफ़िसर डीपी की पाश्चात्य सभ्यता की ओर उन्मुख बेटियों की अश्लील हरकतें शुरू होती हैं, उसकी कविताएँ पीछे छूट जाती हैं और जयंत से उसकी दोस्ती भी पुरानी सी लगने लगती है। आधुनिक होने की इसी रेस में एक दिन ब्लू फिल्म की शूटिंग के दौरान छापेमारी में कुछ लड़कियाँ गिरफ़्तार कर ली जाती हैं। इनमें डीपी की बेटियाँ भी शामिल रहती हैं और यह अगले दिन के अख़बार की सुर्खियाँ बन जाती हैं। लज्जित डीपी को पहली बार महसूस होता है कि उसकी बेटियों के कदम ग़लत और गलीज रास्ते पर बढ़ गए हैं। अब वह पुनः अपनी जड़ों की ओर लौटने का उपक्रम शुरू कर देता है। जयंत उसका फिर से स्वागत करते हुए कहता है कि अभी भी बहुत देर नहीं हुई है यार। हिन्दी कवि के रूप में तुम्हारी वापसी के द्वारा अभी भी खुले हुए हैं। चकाचौंध की दुनिया आँखों पर पट्टी बाँध देती है, जिसका हश्र इस कहानी में डीपी के रूप में दिखाई पड़ता है।

'श्मशान बस्ती' कहानी मुर्दों की दुनिया में गुज़र-बसर करने वालों की बेबसी, भूख, ग़रीबी और हाहाकार की हृदयस्पर्शी तस्वीर दिखाती है। श्मशान बस्ती में रहकर दाह-संस्कार में सहयोग करके अपना पेट चलाने वालों से शहर के दबंग-बर्बर गुंडे अवैध काम करवा लेते हैं। हद तो तब हो जाती है जब वे कातिल इलेक्ट्रिक शवदाह फर्नेस चलाने वाले चौसर चंद से भाड़े की हत्या की निशानदेही मिटाने के लिए लाशों को जबरन जलवाकर राख में बदलवा देते हैं। एक दिन चौसर चंद की बेटी रैना का पत्रकार प्रेमी भी हत्यारों का शिकार बनकर रात के अंधेरे में राख में परिणत करवा दिया जाता है। शहर में पनप रहे घिनौने अपराध की दुनिया के चेहरे से नकाब उठाने में कहानी बेहद सफल रही है।

'निजी सेना' कहानी बिहार में चल रहे जातीय संघर्ष के मूल कारणों की शिनाख़्त करती है। बिहार की रणवीर सेना एक ऐसी ही खून-खराबा करने वाली सेना है जिसने कई सामूहिक बर्बर हत्याओं को अंजाम दिया है। यह सेना एक खास सामंत जाति द्वारा गठित की गई थी जिसने अपना वर्चस्व और दबदबा कायम रखने के लिए बड़ी क्रूरता से दर्जनों दलितों को मौत के घाट उतार दिया था। यहाँ तक कि अपने विरोधी सजातीयों को भी इसने नहीं बख्शा। सामूहिक हत्या-कांडों की पुलिसिया जाँच-रिपोर्टें भी दबंगों के पक्ष को ही मज़बूती प्रदान करती रही थी। कहानी में कथानायक सीवन और उसके भाई भीखन के बापू का यह कथन पूरी व्यवस्था पर प्रश्न-चिह्न खड़ा कर देता है कि ''भीखन की हत्या सीवन ने नहीं राक्षस चौधरी ने की है साहब....एक बेटे को मारकर दूसरे बेटे को भी बर्बाद करने की नियत है इसकी। आप सीवन को छू नहीं सकते....हिम्मत है तो चौधरी को पकड़िए....उसे फाँसी पर लटकाइए। इस

गाँव को ज़िंदा निगलने पर तुला है वह। वह आदमी नहीं भेड़िया है....राक्षस है....कसाई है....काला नाग है।'' उसके इस विलाप की कोई सुनवाई नहीं होती। निजी सेना गठित करने वाले चंदन चौधरी आख़िर में रात की नींद के वक्त हरिजनों और पिछड़ों के घरों में आग लगवा देता है, जिनमें दर्जनों लोग जलकर भस्म हो जाते हैं।

'इंसाफ की भैंस' कहानी गाँव में होने वाली जातीय राजनीति के दुष्परिणामों को सामने लाती है। छूटभैए नेता अपनी नेतागिरी चमकाने के लिए गाँववालों को आपस में लड़ा-भिड़ा देने के कुचक्र रचते रहते हैं। भैंस पर मोहित एक आदमी का मानना है कि नौकरी-चाकरी के फेर में पड़ने से ज़्यादा अच्छा है नेता बन जाना। इसमें न कोई योग्यता चाहिए, न कोई डिग्री। वह इंसाफ को उस भैंस की तरह समझता है, जो जुगाली करते हुए अपनी धुन में रहती है और किसी की नहीं सुनती। गाँव में एक दलित का सुसंपन्न हो जाना बड़ी जाति वाले को तो छोड़िए, मध्यम जातिवालों को भी सहन नहीं होता। वे उसे षड्यंत्र करके यातनाओं की बलिबेदी पर चढ़ा देते हैं। कहानी में गाँव की आपसी रंज़िश खुलकर सामने आती है।

'माटी के बलमुँआ' कहानी गाँव की एक लाचार स्त्री और उसके मतिमंद पति नेटहा की मन:स्थिति की मनोवैज्ञानिक बुनावट पेश करती है। एक मुँहदुबर पति की पत्नी लाचारी और असमर्थता में घिरकर अपने ही जेठ-जेठानियों से शोषण और उपेक्षा का शिकार हो जाती है। बुलकनी काकी का पति नेटहा ज़ुबान रहते हुए भी परिस्थितियों का मूक दर्शक बना रहता है, मानो हाड़-माँस का नहीं माटी का बना हो। बुलकनी पर जब नेटहा के परिवार वाले जुल्म ढाने की इंतहा कर देते हैं तब अपनी पत्नी के पक्ष में नेटहा का मौन मुखर हो उठता है, जिसे देख सब अचम्भित रह जाते हैं। पुश्तैनी जायदाद से नेटहा काका को महरूम बनाने की तमाम साज़िशें कहानी में दिखाई पड़ती हैं। नेटहा इन लफड़ों से खुद को निस्संग बनाए रखते हैं और धूर-जानवरों की दुनिया में खुद को खपाए रखते हैं। अन्तत: वे गाँव से ग़ायब हो जाते हैं या ग़ायब करा दिए जाते हैं। परिवार के लोग मरने का बिना कोई सबूत मिले उसका श्राद्ध कर देते हैं। लेकिन बुलकनी काकी उम्मीद नहीं छोड़ती है और रोज़ जंगल से लौटने वाले रास्ते को हेरती रहती है।

'बेलाग ठूँठ' कहानी दलितों के नृशंस शोषण और उत्पीड़न का मन को झकझोर देने वाला इजहार है। गाँव में दलितों की हालत अपनी ज़मीन से बेलाग और ठूँठ पेड़ की तरह शुष्क और बेजान जैसी बनी रहती है। बड़े लोग उनसे चाकरी कराना अपना अधिकार समझ लेते हैं। मरणासन्न मुंशी को शहर पहुँचाने के लिए ज़बर्दस्ती चार बूढ़ों को पालकी में जोत दिया जाता है, जो बेचारे भरपेट खाना के बिना और बढ़ती उम्र के कारण खुद भी चलने-फिरने से लाचार हैं। चूँकि गाँव के सारे दलित युवा बगल के गाँव चले गए हैं नाच देखने। पालकी ढोने वाले बूढ़े कुछ ही दूर चलने के बाद गिर-पड़ जाते हैं। मुंशी का इंतकाल हो जाता है। बूढ़ों को इनका कातिल करार दे दिया जाता है और उनकी हाथ-पैर बाँधकर पिटाई की जाने लगती है। ऊपर से पुलिस को बुला लिया जाता है। पुलिस भी इन्हें कसूरवार समझकर इन पर कहर ढाने लगती है। शहर से वह गाँव घोड़ा पर चढ़कर आता है। रास्ते में पानी-कीचड़ के कारण घोड़ा पस्त सा हो जाता है। दारोगा जी को उस पर दया आ जाती है। अब वे घोड़े की जगह पालकी पर चढ़कर शहर लौटना चाहते हैं। उन्हीं बूढ़ों के चार युवा बेटों को पालकी ढोने के लिए बुलाया जाता है। ये युवा सहन नहीं कर पाते और बीड़ी पीते हुए पालकी में माचिस लगा देते हैं।

इस तरह इस संग्रह की कहानियाँ कथाकार जयनंदन के भोगे व देखे हुए यथार्थ का जबर्दस्त पुनर्सृजन है। विषय वैविध्य की दृष्टि से कहानियों में अभूतपूर्व मौलिकता और शोधपरकता समाहित है। मौजूदा कालखंड को परखने और समझने के अनेकानेक उपकरण इनमें मौजूद हैं। भाषा में प्रवाह और कथ्य में नएपन ने कहानियों में रोचकता भर दी है। इस संग्रह की हर कहानी कथाकार की लंबे समय की लेखन-साधना से उपजी परिपक्वता की सौगात एक नए ताजा आस्वाद के साथ पाठकों को सुपुर्द करती है।

000

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीएफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

अयोध्या से गुजरात तक

समीक्षक : भालचन्द्र जोशी
लेखक : सुशांत सुप्रिय
प्रकाशक : नेशनल पब्लिकेशंस, जयपुर,

भालचन्द्र जोशी, 'एनी', 13, एच.आई.जी.
ओल्ड हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, जैतापुर,
खरगोन 451 001 (म.प्र.)
मोबाइल : 089894 32087
ई-मेल: joshibhalchandra@yahoo.com

मनुष्यता की संगत में कविता लिखने का सलीक़ा समय सिखा देता है। कविता कैसी बनेगी, यह उस संगत की समय-सीमा और अन्तरंगता तय करती है। कविता शब्दों में जीवन का आवाहन है। उस पुकार की लय में, उस प्रार्थना की लय में कविता शब्दों की संगत को आकुल हो जाती है। वह निस्तेज शब्दों में प्राण डालने का काम करने लगती है। सुशांत सुप्रिय के कविता संग्रह 'अयोध्या से गुजरात तक' को पढ़ते हुए मुझे कुछ ऐसा ही महसूस हुआ। ये कविताएँ जिस निर्मल मन और सजग विवेक से लिखी गई हैं वह कविता के प्रति भरोसे को मज़बूत करता है।

'एक दिन/मैं अपने घर गया/लेकिन वह मेरे घर जैसा/नहीं लगा/'' (डरावनी बात, पृष्ठ 10) यह सूचना नहीं कविता में भय है। और यदि सूचना है तो भय की सूचना है। इसमें एक ठण्डे समय की आहट को सुनने का आग्रह और उसकी पहचान को स्पष्ट करने का सजग साहस है।''यह एक डरावनी बात थी/इससे भी डरावनी बात यह थी कि/मैंने पुकारा उन सबको/उनके घर के नाम से/लेकिन कोई अपना वह नाम/नहीं पहचान पाया/'' (वही, पृष्ठ 11) नामों को, संज्ञाओं को भूल जाना, भय के आतंक में स्मृतियों का बिखराव है। भय स्मृतियों को उठाकर अपरिचय की अनाम नदी में डाल देता है, जहाँ पहचान का डूबने और बह जाने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है। कविता से इतना सघन रिश्ता जो कविता की पहचान के नष्ट होने की संभावना में सिर्फ चिंतित नहीं है बल्कि उसे बचा लेने का अदृश्य प्रयत्न भी है। कविता की पहचान इस अर्थ में कि रिश्तों की पहचान के बीच ही कविता की पहचान छिपी होती है। रिश्तों और कविता की परस्पर निर्भरता उस खोज का संकल्प भी है जो नष्ट नहीं हुई है, सिर्फ गुम है। उसकी पहचान गुम है। मनुष्यता की यह अभिव्यक्ति घृणा की नहीं, एक ऐसे आक्रोश की है जो विवशता से नहीं पहचान के केन्द्र से आता है। ये रिश्ते उत्तर-आधुनिक समय में गुम हो रहे या नष्ट हो रहे बिम्ब और प्रतीकों की सँभाल के साथ जीवनानुभवों की गति की जड़ता को तोड़ने की साहसी शक्ति है।''अस्तित्व की सड़क पर/मंज़िल ढूँढ़ते हर यात्री के लिए/मील का गड़ा पत्थर है मेरी कविता/तुम्हारी आत्मा के पूरब में उगे/उम्मीद के सूर्य की/लाली है मेरी कविता/'' (मेरी कविता, पृष्ठ 140) सूर्य का उजाला पूरब से होता है लेकिन कविता महज पूरब से नहीं आ रही है यहाँ। वह आत्मा के पूरब से आती है। जब कविता का रिश्ता प्रकृति के नियामक तत्वों से इतना सघन हो जाता है तब कविता अपने आशय बिखरने या गुम नहीं होने देती। रिश्तों की इस संश्लिष्टता में भी वह अपने आशय कविता से बाहर नहीं गिरने देती है। कविता में शब्दों और आशय की यह सजग देखभाल कविता की देखभाल है।

ये कविताएँ अजीब-सी द्वन्द्वात्मकता में है। कवि अवसाद में है लेकिन कविता अवसाद में जाने को उद्यत नहीं है। इनमें ऐसे अनुभव हैं जो सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पदों के बड़े अर्थों की सभ्यता को सामने लाते हैं। यहाँ बदलाव की प्रार्थना में एक किस्म का अवसाद भी है जो बीच में कवि को टोकते और तोड़ने की कोशिशों में हताश करने की कोशिश करते हैं। ''जो खुद को/हमारा अज़ीज़ दोस्त/बताते थे/उन्हें हम अक्सर/अपने जीवन से/निकल भागता हुआ/देखते हैं/'' (हम भी क्या चीज़ थे, पृष्ठ 12) क्या यह सिर्फ रिश्तों के अप्रत्याशित टूटने का इकलौता दुख है ? इसमें मानवीय रिश्तों के प्रति पैदा हो रहे अविश्वास के प्रति अवसाद और वेदना भी है। एक ऐसा छल जो बड़े और लम्बी अवधि के भरोसे को तोड़कर भाग रहा है। यहाँ कवि भरोसे से पलायन और भरोसे के बीच पलता छल भी है। इनमें प्रश्न नहीं है लेकिन अपने अवसाद में गहरी प्रश्नाकुलता दबी है जो जीवन के गहरे अर्थ-सम्बन्धों को संदिग्ध ही नहीं कर रही है बल्कि अविश्वास के मुकाम पर खड़ी कर रही है।

डर, भय, अविश्वास, इन कविताओं में प्रथम दृष्टया केन्द्रीय स्वर लगता है लेकिन इसी के बीच सुशांत बहुत सावधानी और कविता की अनिवार्यता में उम्मीद और बचाव के

निराकरण भी रखते हैं जो गद्यात्मक सुझाव नहीं काव्यात्मक आग्रह की भाँति आते हैं/ जैसे, ''लुटेरे इधर से ही गए हैं/यहाँ प्रकृति की सारी खुशबू/लुट गई है/भ्रष्ट लोग इधर से ही गए हैं/यहाँ एक भोर के माथे पर/ कालिख लगी हुई है/फरेबी इधर से ही गए हैं/यहाँ कुछ निष्कपट पल/ठग लिए गए हैं/ हत्यारे इधर से ही गए हैं/यहाँ कुछ अबोध सपने/मार डाले गए हैं/हाँ, इधर से ही गुज़रा है/रोशनी का मुखौटा पहने/एक भयावह अँधेरा/कुछ मरी हुई तितलियाँ/कुछ टूटे हुए पंख/कुछ मुरझाए फूल/कुछ झुलसे बसंत/ छटपटा रहे हैं यहीं/लेकिन सबसे डरावनी बात यह है कि/यह जानने के बाद भी/कोई इस रास्ते पर/उनका पीछा नहीं कर रहा/'' (इधर से ही, पृष्ठ 26, 27) यहाँ तमाम क्रूरता और निर्ममता की मार्मिक सूचनाओं के बीच एक विवश चेतावनी है, पराजित दुख है कि इन सबके प्रतिरोध में, कोई आगे क्यों नहीं आया? किसी ने पहल क्यों नहीं की है? यानी सूचना के बीच ऐसी मार्मिक प्रश्नाकुलता है जो समय की क्रूर और निर्मम हरकतों के सामने खड़ी होती है। अपने समय के सच से सामना करने के लिए, यदि ये कविताएँ एक गहरे आत्म संघर्ष से गुज़रती है तो उससे आगे जाकर उसमें कवि की एक विश्व दृष्टि भी नज़र आती है। 'इक्कीसवीं सदी के बच्चे के लिए लोरी' ऐसी ही कविता है।

बाज़ार अपने नित नए रूप-रंग बदलने के उपरांत भी पहचान छिपा नहीं पाता लेकिन उससे बड़ी त्रासदी यह है कि वह अब सर्व-स्वीकृत होता जा रहा है। वह अब कविता में उसे प्रतिकार के पदों का ही इस्तेमाल करने लगा है। बाज़ार भी शांति, सद्भाव, विश्व मैत्री और मानवाधिकार जैसे पदों का उपयोग करते हुए अपने पक्ष में एक महीन बुनावट में जाल तैयार कर रहा है। वह प्रतिपक्ष में खड़ा होकर पक्षधर लगने लगा है। ऐसे में सुशांत मनुष्यता के रचनात्मक पाठ के लिए जो शब्दों को कविता में इस्तेमाल करते हैं, वे अपने मूल अर्थों को प्रकट करने में सक्षम नज़र आते हैं। वे कभी-कभी भय और हताशा-सी लगने वाली भाषा में सचेत करते हैं। ''कई दुख-दर्द/मुझे जी रहे थे/.... कई तारीखों में से/झर रहा था मैं/कई स्मृतियों में/मौजूद था मैं/एक जीवन/मुझ में से होकर/गुज़र रहा था/'' (लेखा-जोखा, पृष्ठ 130) मनुष्य की सबसे बड़ी पूरे समाज और सभ्यता की सबसे बड़ी त्रासदी यही होगी कि वह इतिहास को बनते या होते नहीं देखे बल्कि उस होने में ही 'झर रहा' होने को महसूस करे। इतिहास का क्षरण पूरे समय, पूरे कालखण्ड की बड़ी त्रासदी है। व्यक्ति इतिहास में उपस्थित न हो और इतिहास में से भी बीत जाए, गुज़र जाए, यह एक डरावना दृश्य है। कोई भी सभ्यता या संस्कृति इतिहास के बीच, इतिहास के साथ अपनी स्वाभाविक सत्ता का विस्तार चाहती है। उसमें जीवन की आश्वस्ति होनी चाहिए। ''बची हुई हैं अभी/उन सारी जगहों की/ आदिम सुंदरता/उसके हिस्से की रोशनी में/नहाती हुई/'' (सबसे अच्छा आदमी, पृष्ठ 40) यह बचे हुए की जो पहचान है, यह बड़ी आश्वस्ति है। पहचान की यह निरन्तरता बनी रहनी चाहिए। ऐसी पहचान के हर अवसर के लिए कवि तत्पर है। यह तत्परता भी इस बात की पहचान है कि मनुष्य को, कवि को अपनी रचनात्मकता को किस शक्ति तक ले जाना है और फिर उसकी पहचान स्पष्ट करना है। इसलिए तमाम भय और संदेह के इन कविताओं में रचनात्मक सक्रियता की आकुलता है। वे आज के बदलाव की आहट को 'कल रात के सपने में' सुनते हैं। समय की क्रूरता और विसंगतियों को कामगार औरतों के दुख में देखते हैं। सुशांत के पास एक दृष्टि है जिसे वे कविता-विस्तार में भय, दुख, संदेह, हताशा और उम्मीद की ओर ले जाते हैं। इन सबके बीच कविता को हताशा में अकेला नहीं छोड़ते हैं। वे एक आश्वस्ति की पुकार में कहते हैं कि ''वे और होंगे जो/फूलों सा जीवन/जीते होंगे/तुम्हें तो हर बार/भट्टी में तपकर/निकलना है/जागो कि/निर्माण का समय/हो रहा है/'' (ईंट का गीत, पृष्ठ 48) यह ईंट का गीत मनुष्य की अदम्य जिजीविषा का गीत है। उस उम्मीद और साहस का गीत है जहाँ ''एक दिन मैं/खाद में बदल जाऊँ/और मुझे खेतों में/हरी फसल उगाने के लिए/डाले किसान/'' (मेरा सपना, पृष्ठ 58) की प्रार्थना का सपना है।

एक दौर या जन कविता में प्रतिकार की भाषा में एक हिंसक शोर और क्रूर आक्रमकता थी। निश्चित रूप से यह शोर और आक्रमकता समय के यथार्थ हिस्सा थे लेकिन कविता में यह प्रतिकृति नहीं इसका निराकृत प्रतिलोक चाहिए था। यह समाज आक्रमकता से नहीं सक्रियता से बनता है। अपेक्षाओं और उम्मीदों के साहस से बनता है। सुशांत अपनी कविताओं में इसी साहस की तलाश भी करते हैं और भय और त्रासदी के बीच उम्मीद के इस साहस को स्थापित भी करते हैं। जीवन में आकर्षण और विकर्षण के बीच वे साहस की कविता रचते हैं। अपनी कविताओं में वे जीवन की गुम हुई ज़रूरी, मूल्यवान और सार्थक संज्ञाएँ खोज कर लाते हैं और उसे मनुष्यता के पद से जोड़कर उसकी सार्थकता को पुनर्जीवित करते हैं। ''मैं उसे/प्यार से देखता हूँ/और अचानक वह निस्तेज लोहा/मुझे लगने लगता है। किसी खिले सुन्दर फूल-सा/ मुलायम और मासूम/'' (किसान का हल, पृष्ठ 15)। सुशांत जानते हैं कि इस मुलायम और मासूम लगने के लिए लोहे के साथ कवि का प्रयास भी ज़रूरी है। इसलिए उन्हें पता है कि इस संसार को खूबसूरत बनाने के लिए प्रकृति की हरकतों में मनुष्य की भागीदारी होनी चाहिए।

सुशांत एक डरे हुए सकपकाए समाज को और अधिक संदिग्ध नहीं करना चाहते बल्कि उसे उस भय से छुटकारा दिलाना चाहते हैं। उन्हें शब्दों और कविता पर भरोसा है कि यह भी हवा-पानी की तरह ज़रूरी है। ये कविताएँ बनावटी जीवन और उत्तर आधुनिक समय का भयावह दृश्य पैदा करती है तो उसके लिए उम्मीद भी बचाकर रखती है। समाज की विसंगतियों और मनुष्य के ख़िलाफ़ होते षड्यंत्रों से आहत उनकी कविता महज एक अकेले कंठ का रुदन नहीं है। वे इस कठिन समय में मनुष्य को उसकी त्रासदियों के साथ अकेला छोड़ देने की विवशता से बाहर आना चाहते हैं। उनकी कविता सर्वहारा का उसके समूचे अस्तित्व के साथ स्वीकार की घोषणा है।

''पाँच सितारा होटल नहीं है मेरी कविता/जहाँ तुम्हारी फटी जेब के लिए/ 'प्रवेश निषेध' लगा हो।'' कविता की चिंता में अयोध्या से लेकर गुजरात तक शामिल है। पूरी मार्मिकता से।

000

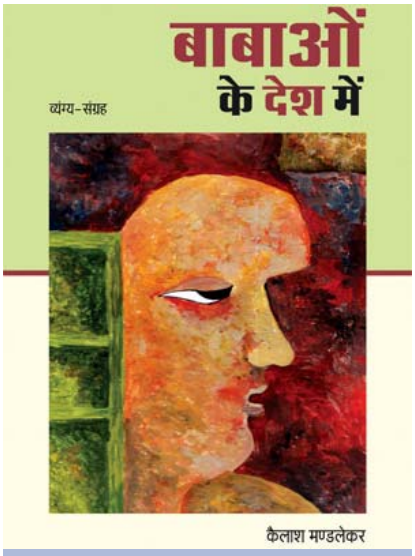

पुस्तक समीक्षा

बाबाओं के देश में

समीक्षक : सूर्यकांत नागर
लेखक : कैलाश मंडलेकर
प्रकाशक : बोधि प्रकाशन जयपुर

सूर्यकांत नागर, 81 बैराठी कॉलोनी, इंदौर
मध्य प्रदेश
मोबाइल : 9893810050

कैलाश मंडलेकर व्यंग्य के क्षेत्र का सुपरिचित नाम है। वे गत तीन दशक से व्यंग्य लेखन कर रहे हैं। विधा के प्रति उनके समर्पण का इससे अधिक पुख़्ता प्रमाण और क्या होगा कि इस पूरे कालखंड में वे मुख्यत: व्यंग्य विधा से ही जुड़े रहे। यह लम्बी साधना का ही परिणाम है कि उनके व्यंग्य सुसंगत, मारक तथा विचारपरक हैं। उनके व्यंग्य में लोकहित, लोकमंगल का भाव है। एक किस्म की सामाजिक प्रतिबद्धता। रचनाकार के लोकमंगल की भावना जितनी तीव्र होगी उसमें सत्य को पकड़ने की सामर्थ्य भी उतनी ही अधिक होगी। जब भी मंडलेकर कोई विसंगति, अंतर्विरोध, विद्रूपता, पाखंड, मिथ्याचार, शोषण, अंधविश्वास या मूल्यहीनता को देखते हैं, आक्रोश से भर जाते हैं उनका यह आक्रोश अराजक या प्रचारात्मक नहीं है, बल्कि सात्विक और ईमानदार है। कैलाश मंडलेकर का परिवेश व्यापक है और संवेदना गहरी है। भीतर के जागरण के लिए बाहरी आँख खुली रहनी चाहिए, यही कारण है कि उनकी सूक्ष्म दृष्टि चेहरों के अदृश्य शिलालेखों को पढ़ लेती है।

मंडलेकर की ताज़ा किताब 'बाबाओं के देश में' में अड़तालीस व्यंग्य आलेख सग्रहित है। वस्तुत: ये एक अख़बार के व्यंग्य स्तम्भ के लिए नियमित रूप से लिखे गए आलेख हैं। यों आमतौर से स्तम्भ लेखन कोई बहुत प्रतिष्ठा का प्रतिमान नहीं माना जाता। लेकिन यह पूर्ण सत्य नहीं है। परसाई, शरद जोशी, रविन्द्रनाथ त्यागी, गोपाल चतुर्वेदी, ज्ञान चतुर्वेदी, कृष्ण चराटे आदि अनेक व्यंग्यकारों ने स्तरीय व्यंग्य लेखन किया है। शरद जोशी ने तो लम्बे समय तक प्रतिदिन स्तम्भ लेखन कर नया कीर्तिमान रचा था। बहरहाल कैलाश मंडलेकर की व्यंग्य रचनाओं में अधिकांश व्यंग्य समसामयिक हैं, और कुछ समकालीन। सामयिक और समकालीनता में भेद किया जाना चाहिए। सामयिक से सीमित कालबोध का आभास होता है। जबकि समकालीनता का फलक विस्तृत है। समकालीन शब्द मात्र तात्कालिकता या निकट वर्तमान का पर्याय नहीं है। उसका कालबोध दीर्घकालिक है। उसमें निकट अतीत और निकट भविष्य की आहट समाहित है, अर्थात स्थिति विशेष का व्यापक और विस्तृत विवरण जो हमें जीवन समाज और परिवेश को जानने समझने का अवसर देता है।

'बंद के दौरान करम ख़ुदा के बन्दों का', वाले लेख में शहरों में आए दिन होने वाले बंद पर तंज़ कसा गया है। बंद कराने वाले, अच्छा बुरा, आगा पीछा या नफ़ा नुकसान नहीं देखते। वहाँ स्वार्थ और आंदोलनात्मक आवेग प्रमुख है। निजी अस्पतालों द्वारा किए जाने वाले शोषण की जीवंत तस्वीर पेश की गई है रचना, 'अगस्त में मरने वाले बच्चों के नाम

में'। सरकारी अस्पतालों की अव्यवस्था और संवेदन हीनता पर भी तीखी टिप्पणी की गई है। निजी अस्पतालों की अव्यवस्था पर व्यंग्यकार की यह टिप्पणी देखिए -गाँव का ग़रीब महँगे शानदार नर्सिंग होम के दरवाज़े पर ठिठका खड़ा रह जाता है। जबकि नर्सिंग होम वालों की कोशिश रहती है कि वह एक बार अन्दर भर आ जाए फिर भिखारी तो उसे वे खुद ही बनाकर छोड़ेंगे। अतिक्रमण अभियान में शहरों में अतिक्रमण हटाने, न हटाने में होने वाली राजनीति और मिली भगत का कच्चा-चिट्ठा खोला गया है। धुंध कोहरे में ही नहीं सियासत में भी है, कहकर लेखक ने अपने सरोकारों के संकेत दिए हैं। कोहरे के कारण लेट होने वाली ट्रेनों और यात्रियों की असुविधा के बहाने सियासतदानों पर तंज़ कसने का मौका भी व्यंग्यकार तलाश लेता है। वह कहता है शाल के भीतर छुपा हुआ व्यक्तित्व विशाल ही नहीं टुच्चा भी हो सकता है। पुलिस की छवि आज इतनी भयावह हो गई है कि उसे सुरक्षा व्यवस्था के लिए भी तैनात किया जाए तो भी जनता उसे भयातुर होकर संदेह की नज़र से देखती है। इस संदर्भ में मंडलेकर की यह अंतर्दृष्टि देखिए, पुलिस और सुरक्षा के बीच यह भयातुर अन्तर्विरोध क्यों है ? इसमें जो अनकहा है वही कहे की ताकत है। माँ की याद आ गई है में माँ को शिद्दत से याद किया गया है। इस व्यंग्य में करुणा की गहरी अंतर्धारा है। रूसी व्यंग्यकार अन्तोन चेखव ने कहा है कि असली व्यंग्य के मूल में करुणा और सहानुभूति होती है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने भी कहा है कि व्यंग्य में करुणा नहीं होगी तो वह दूर तक नहीं चल सकता। कैलाश मंडलेकर के आधुनिकताबोध और सजग दृष्टि को भी इस व्यंग्य में रेखांकित किया जा सकता है। जब वे महानायक के एक टी वी विज्ञापन की खिल्ली उड़ाते हुए कहते हैं कि, लेकिन उन दिनों टीचरों को क्लास के बच्चों के टिफिन खोलकर छोले खाने की आदत नहीं थी।

'मैं ग़मज़दा हूँ' में व्यंग्यकार ने बरसात छाता और मौसम विशेषज्ञों को भी एक साथ लपेटे में ले लिया है। उनका एक कथन है, जो महिलाएँ बरसात में मैच वाली साड़ी और छतरी लेकर निकलती हैं वे चाहकर भी छीटों और बौछारों से नहीं बच पातीं। इस वाक्य में छींटों और बौछारों से न बच पाने के गहरे निहितार्थ हैं। रेलवे के रिज़र्वेशन काउंटर में होने वाले अनुभवों का तथ्य परक और दिलकश चित्रण हुआ है इसी शीर्षक वाले व्यंग्य में। ग़रीब मरीज़ और महँगे इलाज के बीच झोलाछाप डॉक्टरों की कथित उपयोगिता के साथ वर्गभेद का उल्लेख करके एक बार फिर लेखक ने अपने सामाजिक सरोकारों का परिचय दिया है। साहित्य और संस्कृति के इलाकों में तेज़ी से प्रवेश कर रहे बाज़ार के ख़तरों के प्रति भी व्यंग्यकार ने आगाह किया है। लेखक को बाज़ार के मायावी षड्यंत्रों की अच्छी पहचान है। भूमंडलीकरण और उदारीकरण के दौर में पूँजी और बाज़ार के बढ़ते प्रभाव के प्रति भी लेखक चिंतित है। इसी वजह से जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में बाज़ार के प्रवेश से उत्पन्न ख़तरों का ज़िक्र उन्होंने अनेक निबंधों में किया है। यह कि वैश्वीकरण या उदारीकरण का नारा एक छलावा है। यहाँ बात बराबरी की नहीं अपने आर्थिक साम्राज्य के विस्तार की है। बाज़ार के लिए सुन्दरता ही सर्वोपरि है। कूड़े को भी और मस्तिष्क में प्रत्यारोपित सुन्दर दिखाया जा रहा है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ सिर्फ माल ही नहीं बेच रही हैं बल्कि बड़ी चालाकी से विचार भी हमारे मन और मष्तिष्क में ठूँस रही हैं। जबकि हक़ीक़त यह है कि उन्हें उपभोक्ताओं की चिंता नही है, अपने अंश धारकों के हितों की फ़िक्र है। बाबाओं के देश में शीर्षक आलेख में भी बाज़ारवाद की विसंगतियाँ हैं।

कैलाश मंडलेकर के पास एक सतत् प्रभावी भाषा और सजीव शैली है। बिटमाने जैसे देशज शब्दों से भी उन्हें परहेज नही है। उनकी हर रचना एक समृद्ध व्यंग्य दृष्टि का परिचय देती है। उनके कुछ व्यंग्य कथात्मक हैं। इसमें आपत्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि कथा से रचना का आभ्यांतरिक अर्थ स्पष्ट होता है। कैलाश के व्यंग्य कहीं-कहीं गुदगुदाते भी हैं। लेकिन यह हँसी मनोरंजक नहीं उपहास की है जो विद्रूप को खोलती है। यह प्रतिबद्ध रचनाकार के लेखन में प्रतिरोध का भाव है और यही व्यंग्य लेखन की सार्थकता भी।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : जुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. **उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित। **पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2019

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

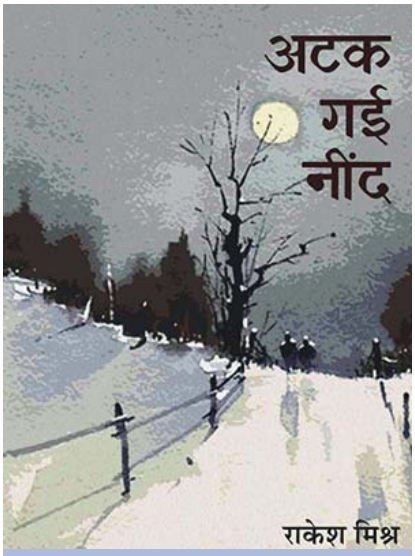

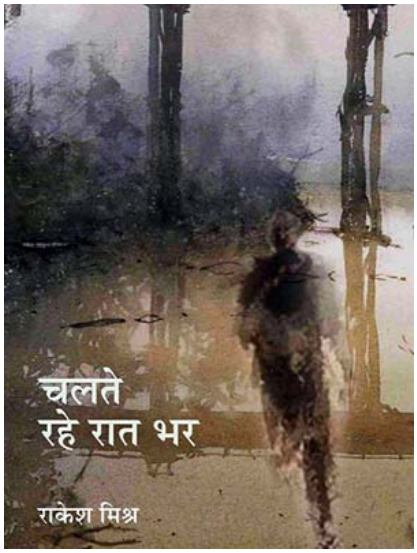

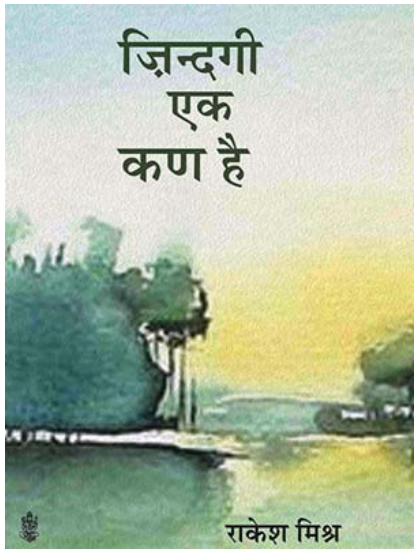

एकाग्र

अटक गई नींद
चलते रहे रात भर
ज़िन्दगी एक कण है

समीक्षक : डॉ. सीमा शर्मा
लेखक : राकेश मिश्र
प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

डॉ. सीमा शर्मा, एल-235, शास्त्रीनगर,
मेरठ (उ.प्र.),
मोबाइल : 9457034271
ईमेल : sseema561@gmail.com

हम एक ऐसे युग में जी रहे हैं जहाँ प्रौद्योगिकी ने हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है और नित-नए परिवर्तन घटित हो रहे हैं। ऐसे में इन परिवर्तनों के अनुरूप स्वयं को ढालना और उन प्रभावों से भी स्वयं को बचाना जिनके कारण हमारा जीवन दु:साध्य हो सकता है, एक चुनौती है। वास्तविक दुनिया से अधिक आभासी दुनिया हम पर हावी है। एक ही परिवार के लोगों के बीच संवाद वैसा नहीं रह गया है जैसा कि होना चाहिए या कि पूर्व में था। लोग आभासी दुनिया में खो से गए हैं। धरातल पर घटित यथार्थ और सूक्ष्म अनुभूतियों को समझने का अवकाश ही कहाँ हैं। ऐसे समय में कविता लिखना आसान नहीं। ऐसी ही किसी अवस्था को ध्यान में रखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा होगा- ''ज्यों-ज्यों हमारी वृत्तियों पर सभ्यता के आवरण चढ़ते जाएँगे, त्यों-त्यों एक ओर तो कविता की आवश्यकता बढ़ती जाएगी, दूसरी ओर कवि कर्म कठिन होता जाएगा।'' मुझे लगता है किसी लेखक के लिए लिखना शौक से अधिक उसकी विवशता होती है क्योंकि उसकी भावनाएँ उसे लिखने के लिए विवश करती हैं। इसी का परिणाम है कि कवि राकेश मिश्र के तीन काव्य संग्रह एक साथ प्रकाशित हुए हैं। यह एक सुखद स्थिति है। 'अटक गई नींद', 'चलते रहे रात भर' तथा 'ज़िन्दगी एक कण है'। कुछ ही महीनों के अंदर इनका दूसरा संस्करण भी प्रकाशित हो चुका है यह इनकी लोकप्रियता को दर्शाता है और यह एक उपलब्धि ही मानी जाएगी।

'अटक गई नींद' काव्य संग्रह की अधिकांश कविताओं का मूल विषय 'प्रेम' है; जिसे कवि ने उदात्त रूप में चित्रित किया ''मैं जानता हूँ/हवा में है/सुगंध तुम्हारी/पर डरता हूँ ज़रा-सा/कहीं मेरी मुट्ठी में आते ही/तुम उड़ न जाओ।'' कवि के लिए 'प्रेम' छीनना नहीं सहेजना है। एक अन्य कविता 'याद' देखिए- ''एक सरल हस्ताक्षर है/तुम्हारी याद मेरी साँसों पर/ताम्बई स्याही में लिपटी/नकल करके जिसकी/साँसों के हाशिए पर/अक्सर तुम्हें छू लेता हूँ।'' कवि के ये उदात्त भाव मानवीय वृन्तियों का परिष्कार करते हैं। 'तस्वीर', 'आसमान', 'पलक', 'तुम्हारा प्रेम', 'याद', 'हम-तुम', 'प्यार', तुम्हारी आँखें', 'तेरे-मेरे', 'होंठ', 'तुम्हारी चाह', 'तितलियाँ', 'ढाई आखर', 'उसकी आँखें', 'वृत्त', 'तुम' आदि उनके कविताओं में कवि ने 'प्रेम' के अनोखे और मौलिक स्वरूप की कल्पना की है। ''तुम रहते हो तो/दो बूँद नमी ले आती है/हवा/तुम रहते हो तो/आम की महक से सरोबार हो जाती है/दिशा/तुम रहते हो तो/जीवन के पास रहती है/दया।'' प्रस्तुत कविता की अंतिम पंक्ति 'तुम रहती हो तो जीवन के पास रहती है दया' कहकर कवि ने प्रेम को एक अलग ही शीर्ष पर स्थापित कर दिया है। एक अन्य कविता 'प्रेम' में कवि राकेश मिश्र ने ''प्रेम चरमोत्कर्ष है समस्त बिन्दुओं के बीच'' कहकर अपने भाव को और अधिक स्पष्ट कर दिया है। प्रस्तुत काव्य संग्रह का शीर्षक 'अटक गई नींद' कवि की कोमल भावनाओं का प्रतीक है। ''आँखों में अटक गई नींद/सपनों में कौन आया/..... आधी है धरती आधा आकाश है/

कोयल के बोलों में आधी ही प्यास है/हर कोई लगे है मीत/सपनों में कौन आया/'' नींद का अटकना पर सपनों का आना यह जागने और नींद के बीच की अवस्था है या कहें जागृति और निद्रा से परे, 'सृजन की अवस्था' जब कवि एक अलग ही दुनिया में विचरण करता है जहाँ वह जागता है और न ही पूर्ण नींद में नहीं पहुँच पाता है।

दूसरे काव्य संग्रह 'चलते रहे रात भर' में कवि राकेश मिश्र ने समकालीन समाज व्यवस्था के विविध पक्षों को पाठकों के समक्ष रखा है। इन कविताओं में किसी प्रकार का वाग्जाल नहीं अपितु अनुभूति के साथ-साथ विचार तत्व स्वाभाविक रूप से विद्यमान हैं। मुक्तिबोध के शब्दों में ''जीवन जगत के संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदन में समाई हुई आलोचना दृष्टि के बिना कवि कर्म अधूरा है।'' इस परिभाषा के अनुरूप, राकेश मिश्र एक आत्मचेतस व्यक्ति हैं जो वैविध्यमय जीवन के प्रति अपनी संवेदनात्मक प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करते हैं- ''जब कभी मैं/ज़मीन पर/सो पाने की कशमकश में/करवट बदलता हूँ/मेरे कान धरती की ओर होते हैं .....करवटों का बदलना/ कान धरती से दूर रखूँ/आँखे आसमान की ओर/ओर एक चारपाई ले आऊँ/धरती के बहुत करीब/नींद नहीं आती।'' ये सरल और सहज सी दिखने वाली पंक्तियाँ; कितना गूढ़, अर्थ समटे हैं। हम सभी किसी न किसी प्रकार इसी प्रयास में रहते हैं कि 'धरती' से कुछ दूर रहें। धरती को छोड़ तो नहीं सकते; यह हमारी विवशता है लेकिन बहुत पास रहने पर हमारा ज्ञान, और संवेदना कुछ न कुश्रछ करने के लिए प्रेरित करती है। ऐसी स्थिति में धरातल की जटिलताओं से पलायन सबसे सुगम मार्ग है। एक अन्य कविता 'रोटियाँ' धरातल की खुरदुरी सच्चाई को दर्शाती हैं- ''बाँध दो/सूखी रोटियाँ/कटीले तारों से/पोत दो/मक्खन/सूखी रोटियाँ/नंगी हों/तो/ दस्तावेज़ होती हैं/हमारी बेईमान आदमियत की।'' कवि ने 'शहर' नामक कविता मे 'धरती' से कुछ दूर और बचते से लोगों का बिम्ब प्रस्तुत किया है-

''लोग लटके हुए सलीबों से / कैसे ईमान का शहर है ये। / सारा दिन दौड़ते हैं शीशे पर / जाने किस जान का शहर है ये। / पत्थरों के महल में रहता है / सबसे अनजान सा शहर है। / घर सी कुछ बात ही नहीं लगती / ख़त्म पहचान का शहर है ये।''

घरों में भौतिक सुख सुविधाएँ तो बढ़ रही हैं लेकिन अपनापन और संवेदनाएँ घट रही हैं। भौतिक वस्तुओं के जाल में घिरा मनुष्य अकेला होता जा रहा। क्या मात्र भौतिक सुख सुविधाएँ मनुष्य की सम्पूर्ण दैहिक, मानसिक एवं बौद्धिक आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकती हैं? क्या अपनापन भी बाज़ार से खरीदा जा सकता है? ऐसे ही किसी भावावेश में कवि ने 'आदमी' नामक कविता लिखी होगी-

''आदमी के काम का क्यूँ ना रहा खुद आदमी। कौन आगे बढ़ गया खुद घट गया जब आदमी।''

विशेष बात यह है कि कवि स्वयं को भी इस अपराधबोध से मुक्त नहीं रख पाता तभी तो लिखता है- ''मेरी कविता/घिर जाती है/एक धीमे अपराध बोध से/घना/ घहरा/नीला/मैं ठहरा/बन्दी/अपनी ज़रूरतों का।'' इस प्रकार 'चुप है आदमी' कविता वर्तमान संदर्भ में बड़ी प्रासंगिक है- ''षड्यंत्र में चुप है आदमी/सुन रही है जब दिशा भी/बोल न बोले हवा भी/घात में हर शख़्स है। अब नहीं वह व्यक्त है।'' 'दर्द', 'मुझे तो', 'कुछ बातें', 'भागता रहता हूँ मैं', 'मैं लड़ा कभी नहीं', 'बीत गई रात', 'कस्तूरी कुंड', 'कृष्ण विवर', -सिहरन' और 'कहा है तुमने' ऐसी कविताएँ हैं जो संवेदना के स्तर पर पाठक को झकझोरती हैं। यथा- ''ये सिहरन/सावनी फुहारों का स्पन्दन है। क्या फर्क है/इसमें और उसमें/जो पैदा होती है। आतंक के नए-नए कारनामों/ नेताओं के बयानों और/बेरोज़गारी से।''

विवेच्य काव्य-संग्रह की कविताएँ इसके शीर्षक 'चलते रहे रात भर' को सार्थक बनाती हैं। यहाँ चलना निरुद्देश्य नहीं है। कवि अपने ज्ञानात्मक संवेदन के आधार पर समूचे समाज की स्थितियों को जाँच-परख लेना चाहता है, इसके लिए वह निरंतर चलता रहता है कभी सशरीर तो कभी वैचारिक रूप से- ''भागता रहता हूँ/मैं/मेरा समूचा अस्तित्व/डरता है/किसी भी पड़ाव से/ पड़ाव/सत्य होते हैं उनके जो/पहुँच चुके हैं। थक चुके हैं/मैं थकना तो नहीं चाहता।'' कवि की इस चाह का प्रमाण प्रस्तुत काव्य संग्रह की कविताओं के रूप में देखा जा सकता है।

उपरोक्त दोनों काव्य संग्रहों के बाद कवि राकेश मिश्र का तीसरा काव्य- संग्रह 'ज़िन्दगी एक कण है', मानवीय जीवन को समझने का एक प्रयत्न है। इस प्रयत्न को समीक्ष्य संग्रह की प्रतिनिधि कविता में देखा जा सकता है- ''ज़िन्दगी/एक कण है/ उपयोग सरल/समझ मुश्किल है/एक अनंत खोज है/समतल गहराइयों की।'' प्रस्तुत कविता जैसे जीवन की परिभाषा बन जाती है। मिश्र जी प्रस्तुत संग्रह में ज़िन्दगी की मात्र परिभाषा प्रस्तुत नहीं करते वरन् उसे जीने का सलीक़ा भी बताते हैं- ''जीना है/ उसके लिए/जिससे ज़िन्दगी अच्छी लगती है/जीना है/उसके लिए भी जिस बिन/ ज़िन्दगी नहीं है।''

इन कविताओं की सकारात्मकता पाठक को अपनी ओर आकृष्ट करती है। यह कविता का ऐसा दौर है जब नकारात्मक कविताएँ खूब लिखी जा रही हैं, सराही जा रही हैं और महिमा मंडित भी की जा रही हैं। ऐसे समय में इन कविताओं का आना नई ऊर्जा के संचार करने जैसा है। जीवन की जटिलताएँ अपनी जगह हैं लेकिन उन्हीं के बीच सकारात्मकता ढूँढ़ना और उसे जीना एक कला है। इसीलिए कवि में किसी प्रकार की हताशा नहीं वरन् उसके लिए तो ''चमकदार आकर्षणों से/गुँथी है ज़िन्दगी।'' विश्वभर में अवसाद ग्रस्त लोगों की संख्या निरंतर बढ़ रही है उसमें भी हमारा देश शीर्ष पर है। ऐसे में प्रसन्न रहने के लिए, अवसाद मुक्त रहने के लिए भौतिक सुख-सुविधाओं के साथ-साथ जीवन के छोटे-छोटे क्षणों में खुशियों की तलाश करनी होंगी। कोई बड़ी खुशी किसी मनुष्य के जीवन में कितनी बार आ सकती है? लेकिन छोटी-छोटी खुशियों को हर एक क्षण में अनुभूत किया जा सकता है-

''एक बच्चे की आवाज़ / ज़ीरे की महक से सराबोर / फेरी लगाती है / मेरी चेतना की गली में।'' इसी प्रकार ''अपनी उँगलियाँ, बाँधकर मैंने रोप ली छटाँक भर ज़िन्दगी।'' एक अन्य कविता भय नहीं का अंश ''भय नहीं/तृष्णा नहीं/ केवल आनंद/ यह क्षण ही सत्य है।'' कवि स्वभावत: प्राकृतिक अवस्थाओं में भी सकारात्मकता

खोज लेता है। 'बरसात' कविता की पंक्तियाँ दृष्टव्य है- ''बरसात/धरती की समस्याओं के प्रति/आसमान का सकारात्मक प्रस्ताव है।'' विवेच्य संग्रह की कविताएँ प्रसन्नता और उल्लास से भरपूर जीवन का संदेश देती हैं इसके लिए आवश्यक है कि व्यक्ति धरती से जुड़ा रहे; अपनों के साथ रहे और जीवन के कुछ सिद्धान्त हैं उनका अनुपालन भी हो। हर व्यक्ति के जीवन में सिद्धान्त अलग होते हैं। क्योंकि ये मानव निर्मित हैं तो भिन्नता तो स्वाभाविक रूप से होगी ही। उन्हें देखने की सबकी अपनी दृष्टि भी अगल हो सकती है।

कवि के शब्दों मे- ''कुन्नू रिक्श वाले की जोरू/नहीं बैठती/रिक्शे की सीट पर/बैठती है/केवल पायदार पर/कहती है/सिद्धान्त की बात है।''

वैसे तो माँ पर अनेकानेक कविताएँ लिखी गई हैं किन्तु यहाँ कवि राकेश मिश्र ने माँ का एक अलग ही चित्र खींचा है-

''माँ तुम/मेरे खारे मटमैले आँसुओं में खिंची/साफ तस्वीर हो/मेरी स्वप्निल मुस्कुराहटों की/एक मात्र दर्शक/मेरे सपनों ने भेजी है/ जितनी भी चिट्ठियाँ/उन सब का पता हो तुम/माँ।''

सम्पूर्णता में देखें तो राकेश मिश्र के तीनों काव्य संग्रह एक-दूसरे से नितांत भिन्न भावभूमि पर लिखे गए हैं। 'अटक गई नींद' प्रेम कविताओं का संग्रह है तो 'चलते रहे रात भर' में जीवन से जुड़े विविध पक्षों का संधान किया गया है तथा 'ज़िन्दगी एक कण है' जैसे एक दार्शनिक धरातल पर लिखा गया काव्य संग्रह है। इन तीनों काव्य संग्रहों में कुछ कविताएँ ऐसी है जो दूसरे काव्य संग्रह में भी आ गई है। अगले संस्करण में इसका सुधार होना चाहिए। भाव एवं भाषा की दृष्टि से कविताएँ सहज एवं ग्राह्य हैं। कविताओं की यह विशेषता पाठक को अपनी ओर खींचती है और कवि के भाव को समझने में मदद करती है। शुक्ल जी के अनुसार- ''कविता का अंतिम लक्ष्य जगत में मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण करके उसके साथ मनुष्य हृदय का सामंजस्य स्थापन है।'' शुक्ल जी की इस कसौटी पर राकेश मिश्र की यह कविताएँ खरी उतरती हैं।

000

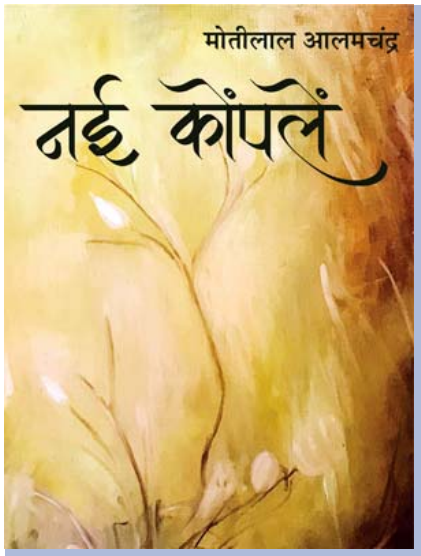

पुस्तक समीक्षा

नई कोंपलें

समीक्षक : पारुल सिंह

लेखक : मोतीलाल आलमचंद्र

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

मोतीलाल आलमचंद्र का यह पहला ही कविता संग्रह है। इससे पहले उनकी दो गद्य किताबें प्रकाशित हुई हैं। लेकिन इस काव्य संग्रह को पढ़ते हुए कहीं भी यह महसूस नहीं होता है कि यह कवि का पहला ही कविता संग्रह है। यह कविताएँ बहुत सुगठित कविताएँ हैं। यह कविताएँ वंचित और शोषित वर्ग की पीड़ा को स्वर प्रदान करती हैं, और उनकी तरफ़ से बात करती हैं। कुल 84 कविताओं में अन्याय और शोषण के विरोध में वैचारिक संघर्ष की जद्दोज़हद दिखाई देती है। यह कविताएँ दलित विमर्श की कविताएँ भी हैं और स्त्री विमर्श की भी कविताएँ हैं। यह कविताएँ आदिवासी विमर्श की भी कविताएँ हैं। इन कविताओं में हर उस वर्ग को आवाज़ दी गई है, जो बरसों से शोषण का शिकार हो रहा है। कविता संग्रह की पहली ही कविता 'स्तन कर' है, जो कड़वे शब्दों में व्यवस्था से प्रश्न पूछती है। वनवासियों ने, आदिवासियों ने जो अत्याचार सहन किए हैं, या आज भी सहन कर रहे हैं, उन अत्याचारों का एक श्वेत पत्र है यह कविता संग्रह। यहाँ आदिवासी पति अपनी पत्नी की लाश को कंधे पर उठा कर चलता हुआ दिखाई देता है तो कहीं दलित दूल्हे को घोड़ी पर चढ़कर नहीं जाने देने का दृश्य उपस्थित होता है। कुछ कविताएँ आरक्षण हटाने की बात करने वालों की आँखों में आँखें डाल कर प्रश्न करती हैं। 'तुम भी तोड़ो तेंदू पत्ता / अहसास करो हमारा जीवन / छोड़कर सत्ता'। 'आरक्षण', 'आरक्षण हटा दो' तथा 'आरक्षण बोल रहा हूँ' जैसी कविताएँ आरक्षण हटाने की बात करने वालों पर तंज़ कसती हैं, और अपने प्रश्न लेकर उनके सामने उपस्थित होती हैं। 'ओ मेलूहाई' एक लम्बी कविता है, जो भारत के मूल नागरिकों को झकझोर कर खड़ा करने की बात करती है। यह कविता तक्षशिला, नालंदा से होती हुई एकलव्य, बिरसा भील से होती हुई आज तक आती है। यह कविता इस संग्रह के स्वर की प्रतिनिधि कविता भी कही जा सकती है। 'जाति काले भारत की' जैसी कुछ कविताएँ एक ही भारत में बसे हुए दो भारतों की बात करती हैं। वह दूसरा भारत, जो काला भारत है। वह जो गैर आर्य भारत है। एक और कविता 'विचारधारा' में तय बातों को मानने से इनकार का भाव है 'कैसे बोल दूँ जय / उस राष्ट्र की माता को / जो जकड़ी हो / भ्रूण के हत्यारे औज़ारों से / घिरी हो जाति की ओछी दीवारों से / रहती हो बेटे के ऑफ़िस के रास्ते वाले अनाथालय में।' संग्रह में किसानों की आत्महत्या को लेकर भी कुछ कविताएँ बात करती हैं। कविता संग्रह में कुछ प्रेम कविताएँ भी हैं, लेकिन यह प्रेम कविताएँ भी उसी वंचित और शोषित वर्ग की प्रेम कविताएँ हैं, जहाँ प्रेम का अर्थ केवल प्रेम ही है। इन कविताओं में मोतीलाल आलमचंद्र ने कहीं शिल्प या शब्दों का आडंबर पैदा करने की कोशिश नहीं की है, सीधे और सरल अंदाज़ में बहुत से लोगों की पीड़ा को प्रतिरोध के स्वर प्रदान किए हैं। यह कविता संग्रह एक महत्त्वपूर्ण कविता संग्रह है, पढ़े जाने योग्य।

000

पारुल सिंह, डब्ल्यू-903, आम्रपाली ज़ोडिएक, सेक्टर 120, नोएडा, उप्र 201301,
मोबाइल : 9871761845, ईमेल : psingh0888@gmail.com

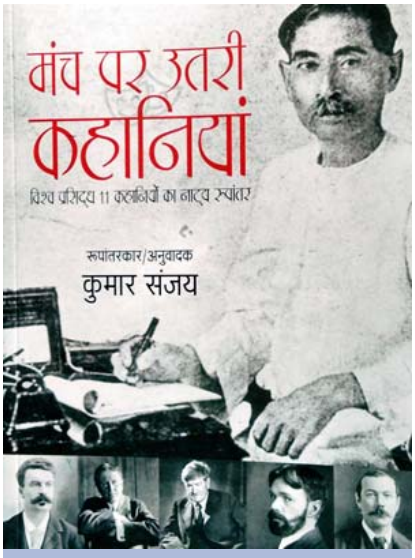

पुस्तक समीक्षा

मंच पर उतरी कहानियाँ

लेखक : कुमार संजय
प्रकाशक : विस्तता पब्लिशिंग, नई दिल्ली

आईना किस काम का

लेखक : जाबिर हुसैन
प्रकाशक : दोआबा प्रकाशन

समीक्षक : अनिता रश्मि

अनिता रश्मि, 1 सी, डी ब्लॉक, सत्यभामा ग्रैंड, पूर्णिमा कॉम्पलेक्स के पास, कुसई, डोरंडा, राँची, झारखण्ड - 834002
ईमेल: anitarashmi2@gmail.com

जीवन एक नाटक ही तो है। उसे कहानियों में रचता है कथाकार। और उन कथाओं में से कुछेक को नाटक में ढाल दिया है कलमकार कुमार संजय ने।

नाटक लिखना इतना भी आसान नहीं। सब कुछ चंद दृश्यों, संवादों और चंद क्रियाकलापों से प्रकट कर देना होता है। कहानियों, वह भी विश्व प्रसिद्ध लेखकों की कहानियों को नाटक में ढालना और भी कठिन। कहानी को कहानी के कलेवर से निकाल दृश्य, एक्शन और संवाद की दुनिया में प्रत्यक्ष परोस देना दुरूह कार्य। और यह कार्य 15 नाट्य पुस्तकों के रचयिता कुमार संजय ने किया है।

नाटकों को भारत में मंचन योग्य बनाने के लिए कई तरह की छूट भी नाटककार को लेनी पड़ी है। कहानी को नाटक, फिल्म में परिवर्तित करने में ये छूट लेनी पड़ती ही है। यथा - कहानी से परे कुछ दृश्यों की रचना, आधुनिक संवादों के सहारे दर्शकों को नाटक से जोड़ने का प्रयास, भारतीय परिवेश, पात्रों का भारतीय नामकरण, स्थानीय भाषा-बोली का प्रयोग... आदि.... इत्यादि!

ग्यारह नाटकों से सज्जित पुस्तक में केवल एक भारतीय नाम है, जो वैश्विक है। वह नाम - प्रेमचंद का है। बाकी दस नामों में समाहित हैं - चेखव, लॉरेंस, टॉलस्टॉय, जेकॉब्स, कॉनन डायल, ओ हेनरी, मोपासाँ, लीकॉक, ली शून।

संवाद और एक्शन की जुगलबंदी से इनकी कहानियों को नाटकीय रूप दिया गया है।

चेखव की कहानी को परिवेश, संवाद, एक्शन के सहारे शानदार रूप प्रदान करता है नाटक 'गिरगिट'....लगभग सवा सौ साल पूर्व लिखित कहानी के पात्रों का नाम, संवाद बिहारी पुट लिए हुए रोचक। पात्रों के नाम पर गौर करें- बबन, बलेसर, सुबोध बाबू, वसंत आदि। दृश्यांकन में भी छूट ली गई है। 'गिरगिट' में आमूलचूल परिवर्तन का दर्शन होता है। पात्र, परिवेश, भाषा सब बिहारी रंग में रंगे। बिहार की बोली की मिठास एक नए रस की सृष्टि कर इस गंभीर नाटक में हास्य का तड़का लगाता है। भाषा की रवानी देखें - अवारा जंगली जानवरन को अइसहीं छोड़ दिया जाए.... अउर तुम ससुर के नाती....! भारतीयता के तड़के ने नाटक में नई जान डाल दी है।

ओ हेनरी की दो कहानियों का रूपांतरण किया है लेखक ने। एक है - कैक्टस ... एक छोटा सा नाटक, प्रेम औ वियोग से रचित। नायक ट्राइसडेल मारिया को पारंपरिक ढंग से

प्रपोज़ करता है, घुटनों के बल बैठ। मारिया भी किसी और दिन कलात्मक ढंग से उत्तर देने की बात कह उस दिन प्रत्युत्तर नहीं देती। केवल पूछ लेती है कि वह स्पैनिश भाषा तो जानता है। नायक इंकार नहीं करता। कैक्टस के साथ स्पैनिश में लिखे टैग को पाकर भी ट्राइसडेल पढ़ नहीं पाता उसका मज़मून और इस शुष्क गिफ़्ट से मारिया के इंकार की प्रतिध्वनि महसूसता है, वह तटस्थ हो गया अब। कैक्टस यहाँ वियोग का कारण बन गया।

मारिया का भाई मार्टिन दक्षिण अमेरिका से आकर उसे मारिया के 'विवाह' में ले जाता है। आख़िरी दृश्य में मार्टिन की नज़र कैक्टस पर पड़ती है, वह उस उम्दा किस्म के कैक्टस के बारे में बताता है। साथ ही टैग का मज़मून भी। टैग में उस अनोखे कैक्टस का नाम स्पैनिश में लिखा था - वेंटोमारमे! अर्थ है - कम एंड टेक मी। बहुत खूबसूरती के साथ संवादों, दृश्य, एक्शन के माध्यम से नाटक में सारी कहानी उतर आई है।

ओ हेनरी की दूसरी कहानी का नाट्य रूपांतर 'वाह री किस्मत'.....नायक सोपी ठंडी रातों में बर्फ़ीली हवा, स्नो फॉल में फुटपाथ पर सोने से बचने के लिए तीन-चार महीने के लिए जेल जाकर सर पर छत की आश्वस्ति पाना चाहता है। कुछेक छोटे अपराध कर पुलिस की निगाह में चढ़ने की पुरजोर कोशिश भी करता है। वह खुद हर अपराध के बाद कहता है कि उसने यह ग़लत कार्य किया है। लेकिन उसे अपराधी नहीं, पागल समझ लिया जाता है.... बार-बार... हर बार। अंत में एक चर्च के बाहर खड़े होकर वह अंदर से आती संगीत लहरी, उपदेश सुन ठानता है कि अब वह कायराना हरकत नहीं करेगा, संघर्ष करेगा। बस, उसी समय चर्च में चोरी की योजना बनाने के इल्ज़ाम में उसे गिरफ़्तार कर लेती है पुलिस। सोपी के मुँह से निकलता है - वाह री किस्मत!

हास्य में करुणा का पुट। संवादों, क्रियाकलापों से पात्र पाठक के मर्म को छूता है। मंचित होकर दर्शक के दिल को भी छू लेगा। लेकिन मुझे लगता है, इस संवाद की आवश्यकता नहीं। अंतिम दृश्य ही शीर्षक को सार्थक रूप देने में सक्षम।

चीनी लेखक ले शून का मोनोलॉग है - एक पागल की डायरी। मनुष्य के आदमखोर बन जाने, बनते जाने, बने रहने की त्रासद स्थितियों से त्रस्त नायक डेमिंग एकालाप का शिकार हो गया है। वह समाज से पूछता है - कोई इंसान ऐसा है जो नरभक्षी नहीं है?

अंत में उसकी गुज़ारिश कि मासूम बच्चों को आदमखोर बनने से बचाया जाए। बहुत खूबसूरती से अपनी बात कहता है यह नाट्य रूपांतर। एकालाप के लिए जैसी भाषा, दृश्य की आवश्यकता है, उसे समाहित किया गया है इसमें। कठिन विधा को विविधवर्णी दृश्यों के सहारे बड़ी सहजता से निभा ले जाते हैं नाटककार संजय।

प्रेमचंद के हास्य की सृष्टि करता नाटक - लॉटरी। लॉटरी के टिकट को आधार बनाकर मुफ़्त में अमीर बनने की भारतीय मानस की स्वाभाविक इच्छा को दिखलाता है। पूरा परिवार लालच का शिकार हो लॉटरी जीतने के लिए विविध तरह के टोने-टोटके में उलझ जाता है।

लेकिन अंत में जीत चैनलवालों के नाम....केवल और केवल चैनलवालों के नाम। यहाँ छूट लेते हुए नाटक आज के समय को प्रस्तुत करता है। हास्य और हास्यास्पद स्थिति! लंबा नाटक लेकिन उबाऊ नहीं।

नाटक - नेकलेस (लेखक - मोपासाँ)

करुण रस से पगी रचना है। नेकलेस के इर्द-गिर्द घूमती कथा का बढ़िया नाट्य रूप। नेकलेस के खो जाने पर फॉरिसटिअर, लॉयसल, मटील्डा के बहुत सार्थक वार्तालाप के साथ नाटक का समापन। नि:संदेह महत्त्वपूर्ण नाटक दर्शकों का दिल जीतने की क्षमता रखता है।

इसी तरह सभी नाटकों के लिए कहानियों का सार्थक चयन उसके प्रस्तुतिकरण के प्रति भी पाठक को आश्वस्त करता है।

नाटककार का दावा है, कहानियों की आत्मा को उन्होंने सभी नाटकों में बचा लिया है, यह प्रयोग इन विश्व प्रसिद्ध कहानियों की आत्मा से भारतीय दर्शकों को पुरजोर तरीके से जोड़ेगा। और हमें उनके दावे, विश्वास पर विश्वास कर, पाठक से दर्शक में परिवर्तित हो नाटकों का आन्नद लेना होगा।

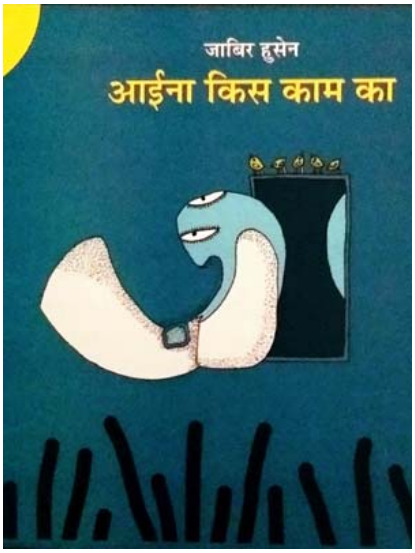

आईना किस काम का

इस पुस्तक में शब्द नहीं, भाव बोलते हैं। कम.... अत्यधिक कम शब्द, अर्थ अधिक.... बहुत अधिक! कवि, लेखक, संपादक जाबिर हुसैन साहब का गद्य जितनी ख़ूबसूरती से अपनी बात परोसता है, काव्य भी उतनी ही ख़ूबसूरती से मर्म को छूता है। 352 पृष्ठों में फैले इस काव्य पुस्तक का नवीन आकार पाठकों का ध्यान खींचता है, वहीं कविताई में बिखरा सूक्ष्म दर्शीय कथ्य भी। पूर्व के संकलनों की तरह ही यह संग्रह भी संवाद के खुरदुरे चेहरे से मिलवाएगा, ऐसा विश्वास कवि के अंदर यूँ ही नहीं है। सादे से कवरवाली पुस्तक में जीवन की विविध रंगीन छटा देखते बनती है। छोटे-छोटे शब्द खर्च कर बड़े अर्थ भर दिए हैं कवि ने संग्रह में। कुछ लंबी कविताओं का आस्वाद भी अलग है, काव्य धारा में डुबकी लगाने को मज़बूर करती हुई, कविता के प्रति आश्वस्ति थमाती हुई कि रहेंगी ज़िंदा.... ज़रूर रहेंगी ज़िंदा कविताएँ! इब्न बतूता पर भी कई बार कलम चलाकर उन्होंने जैसे ज़ेहन में बतूता को जीवित रखने की कोशिश की है। इन कविताओं से गुज़रते हुए पाठक भाव लोक की सैर कर लेता है, इतिहास की भी। जो धारणा लेखक जाबिर जी के संस्मरणों को पढ़कर बनी थी, वह कवि जाबिर जी को पढ़कर और भी पुख़्ता हुई है कि अदब की दुनिया ऐसे रचनाकारों से ही गुलज़ार है। देर तक मन, दिमाग़ को उद्वेलित करती कविताएँ।

000

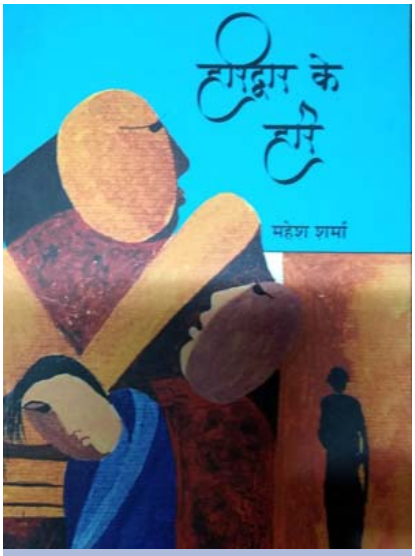

पुस्तक समीक्षा

हरिद्वार का हरि

समीक्षक : गोविन्द सेन
लेखक : महेश शर्मा
प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

गोविन्द सेन, राधारमण कॉलोनी, मनावर-454446, जिला-धार, मप्र
मोबाइल : 9893010439

इधर कहानियों में कहानीपन के ग़ायब होने की चिंता निरंतर व्यक्त की जा रही है। शैल्पिक चमत्कार, अप्रत्याशित कल्पनाशीलता, बेढब फंतासी, अनावश्यक विवरण ने कहानी को अपठनीय बनाया है। यही कारण है कि पाठक कहानी से विमुख होते जा रहे हैं। ऐसे समय में महेश शर्मा का पहला कहानी संग्रह आश्वस्ति प्रदान करता है। शर्माजी ने अपने अनुभव संसार को क़िस्सागोई शैली में कहानियों में पिरोकर कथारस को बहाल किया है। इन कहानियों में प्रेमचंद जैसी सरलता, सादगी और सहजता है। कथ्य और तथ्य की संगति ने इन कहानियों को अधिक विश्वसनीय और पारदर्शी बनाया है। ये कहानियाँ अपने समय के सवालों की बखूबी पड़ताल करती हैं। ये कहानियाँ परिवार और समाज में व्याप्त विसंगतियों और पाखंडों को उजागर करती है। ये कहानियाँ विघटित होते जीवन-मूल्यों के प्रति चिंता प्रकट करते हुए बड़े सामाजिक सरोकारों से अनायास जुड़ जाती हैं।

महेश शर्मा का अनुभव संसार व्यापक है। इन कहानियों में मानवता का परचम लहराते हिन्दू पात्र भी हैं तो मुसलमान पात्र भी। कुटिल पात्र भी हैं तो छले गए पात्र भी। क़ैदी पात्र भी हैं तो उन्हें लूटने और सताने वाले पात्र भी। ग़रीब-अमीर, चालाक-सरल, स्त्री-पुरुष हर वर्ग और धर्म के पात्र इन कहानियों में अपने किरदार के साथ नज़र आते हैं।

संग्रह की पहली कहानी 'एक रिश्ते की मौत' की पहली ही पंक्ति 'किसी व्यवसाय का बंद होना उसमें दिल से लगे व्यवसाई के लिए अपने स्वजन की मौत के समान है' बहुत कुछ कह जाती है। पंडित सरजू महाराज के लिए उनकी होटल किसी स्वजन की तरह ही थी। उनका मरना-जीना उसके बंद होने या खुले रहने पर निर्भर है। 'नीड़ से बिछुड़े' में विस्थापन का दर्द है। पिछली तीन पीढ़ी से भुवान जिस गाँव में बसा था, उस गाँव को बाँध के कारण डूब में आने से छोड़ना पड़ रहा था। उसकी गाय तक उस घर को नहीं छोड़ना चाहती। विकास के नाम पर भुवान जैसे लोगों को बलि देनी पड़ती है। न चाहते हुए भी अपना नीड़ छोड़ना पड़ता है।

'माँ' कहानी इस तथ्य को बखूबी चित्रित करती है कि एक स्त्री भी माँ होकर जब उस एहसास से गुज़रती है, तभी किसी दूसरी स्त्री की ममता को समझ पाती है। 'दूसरी औरत' स्त्री-पुरुष सम्बंधों की रोचक कहानी है जो नातरा प्रथा से जुड़ी है। चम्पालाल चाय का ठेला लगता था। घर में उसकी पत्नी रामली और छह साल का बेटा मदन है। उसकी मन की भटकन थी कि वह एक औरत करना चाहता है। एक औरत के रूप में वह दोस्त नाथू के ज़रिए कीसनाबा की बेटी जोहारबाई को बीस हज़ार देना तय कर ले आता है। इसके लिए रामली और मदन की भी परवाह नहीं करता। आगे का घटनाक्रम बहुत दिलचस्प है।

'आभासी प्यार' में पुरुष की दमित यौन भावनाओं को रोचक ढंग से चित्रित किया गया है। सुशांत बाबू ब्रिटेन में रहने वाली सायना पटेल से आभासी प्यार करने लगते हैं। यह प्यार फेसबुक और इंटरनेट के जरिए चेटिंग करते हुए परवान चढ़ता है। 'हॉट कपल' कहानी आधुनिक उच्च मध्यमवर्ग के स्त्री-पुरुष संबंधों की चारित्रिक गिरावट को प्रदर्शित करते हुए

पुरुष मानसिकता पर तंज़ करती है। 'क्या बिगड़ा मर्द ज़ात का' एक ऐयाश डॉक्टर की कहानी है जो कमली उर्फ़ कामिनी जैसी ग़रीब लड़कियों का देह-शोषण करता है।

संग्रह की शीर्षक कहानी 'हरिद्वार का हरि' में धार्मिक नगरी हरिद्वार की कहानी है जहाँ कथानायक अपने परिवार के साथ गंगा स्नान करता है और पत्नी के आग्रह पर 11 ब्राह्मणों को भोजन करवाता है। धार्मिक आस्था के मुताबिक इससे उन्हें पुण्य मिलेगा और शरीर-आत्मा-मन सब निर्मल होंगे। उनकी यह भी आस्था थी कि हरिद्वार में रहने वाले लोग तो रोजाना पुण्य सलिला गंगा में स्नान करते हैं इसलिए इनका शरीर-आत्मा-मन-हृदय ज़रूर निर्मल होगा। धार्मिकता और दयालुता तो इनके स्वभाव का अविभाज्य अंग हो गई होगी। पर सब भ्रम साबित होता है। एक होटल वाले के यहाँ कथानायक अपनी बनियान भूल जाता है। इस बनियान में रखे आठ हज़ार रुपये रामू सेठ होटल मालिक निकाल लेता है। बनियान तो उसे वापस मिल जाती है, पर रुपये नहीं मिलते। रिपोर्ट करने बाद तो कथानायक की खूब फ़जीहत होती है। स्थानीय नेता हरिभाई रामूसेठ की तरफ से उसे खूब अपमानित करता है। पुलिस भी कुछ नहीं कर पाती। धार्मिक नगरी के आधुनिक हरियों पर यह कहानी तीखा तंज़ करती है और धार्मिक आस्था की पोल खोल देती है।

आस्था पर प्रहार करने वाली एक और सशक्त कहानी है- 'तर्पण'। धार्मिक आस्था के अनुसार माना जाता है कि तर्पण करने से जीव को मुक्ति मिलती है। जगनलाल अपने काका रामधन के साथ अपने पिता की अस्थियाँ लेकर अंतिम तर्पण हरिद्वार करने के लिए जा रहा है। पहली बार उसने अपने गाँव की नदी में तर्पण किया था, दूसरी बार अपने गाँव से चालीस किलोमीटर बहने वाली पवित्र नर्मदा नदी में तर्पण किया था और अब अंतिम तर्पण परम पवित्र गंगा में करने जा रहा है। निम्न मध्यमवर्ग के जगनलाल के लिए ये आर्थिक रूप से बहुत भारी पड़ रहा था। अंधविश्वासों और धार्मिक आस्थाओं को जीवित रखने के जरिए ही तो पंडितों का कारोबार चलता है।

'अस्थि विसर्जन' में सेठ गोकुल प्रसाद की अस्थियों की श्मशान घाट से चोरी की एक अनोखी घटना है। दरअसल सेठ गोकुल प्रसाद का बड़ा बेटा माधव प्रसाद अपनी पत्नी और ससुर के निर्देशन में अपना करोड़ों का हिस्सा प्राप्त करने के लिए इस चोरी को अंजाम देता है।

'कैदी की रोटी' में जेल के गार्ड-जवान मुलाकात करवाने के बहाने पैसे माँगते हैं। ग़रीब किशन 14 दिन से जेल में है। उसे जेल का खाना अच्छा नहीं लगता। उसकी घरवाली उससे मिलने आती है और साथ में खाना भी लाती है। जेल वाले तथाकथित हैडसाब और जवान मुलाकात करवाने के पैसे उसकी घरवाली से तो लेते ही हैं, किशन के लिए लाई हुई जलेबियाँ और मक्का की रोटियाँ भी हड़प लेते हैं। जब किशन ज़मानत के बाद जेल से बाहर निकालता है तब उसकी नज़र हैडसाब और जवान पर पड़ती है तो उसे लगता है कि वह जागीरदार है और वह सब उसकी मक्का की रोटी और जलेबी को तरसते प्रजाजन। कहानी में जेल के भीतर का सजीव चित्रण है।

'उसूल वाला' कहानी में असलम मियाँ राजली को दिया अपना वचन पूरा करता है कि वह उसके दोनों बच्चों की शादी हिन्दुओं से ही करवाएगा, मुसलमान से नहीं। 'भ्रातृहंता' रामायण के प्रसिद्ध पात्र विभीषण और सुग्रीव के पश्चाताप की कहानी है। दोनों ही अपने भाइयों की हत्या करवाने के कारण ग्लानि का अनुभव करते हैं। आदर्शवादी कहानी 'ईश्वर की श्रेष्ठ कृति' में त्याग की भावना को प्रतिष्ठित किया गया है।

इस संग्रह में जीवन के विविध रंगों की कुल जमा 14 कहानियाँ हैं। इन कहानियों में जीवन का यथार्थ भी है और आदर्श भी। कुछ वास्तविक पात्र हैं तो कुछ मिथकीय पात्र भी। कहानियों में मालवा की थोड़ी-सी खुशबू भी मिलती है। ये कहानियाँ धार्मिक पाखंडों पर प्रहार भी करती हैं तो आदर्शों के निर्माण की कोशिश भी इनमें झलकती है। सभी कहानियों में महेश शर्मा ने जीवन की विभिन्न स्थितियों का चित्रण करते हुए कहानीपन कायम रखा है। किताब का गेटअप सुन्दर है।

000

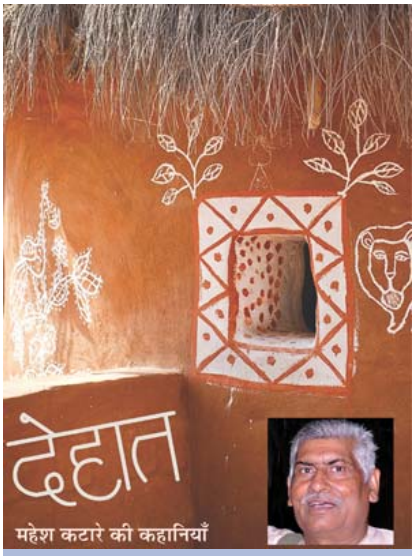

वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार श्री महेश कटारे को 'श्रीलाल शुक्ल स्मृति इफको साहित्य सम्मान'

शिवना प्रकाशन से प्रकाशित कहानी संग्रह 'देहात' के लेखक वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार श्री महेश कटारे को किसान तथा ग्रामीण जीवन के साहित्य सृजन हेतु दिए जाने वाले 'श्रीलाल शुक्ल स्मृति इफको साहित्य सम्मान' की शिवना प्रकाशन परिवार की ओर से बधाई। इसके तहत उन्हें 11 लाख रुपये नकद, प्रशस्ति पत्र और प्रतीक चिन्ह भेंट किया जाएगा। 'देहात' में श्री महेश कटारे जी की किसान तथा ग्रामीण जीवन की कहानियाँ संकलित की गई हैं। इस संग्रह में उनकी 'परजित गंधर्व', 'काठ की कोख', 'भौजी, 'मुर्दा स्थगित', 'हँसिया', 'पानी और चाँद', 'काँख में नदी', 'कुकाल में हंटर', 'पार', 'छछिया भर छाछ', 'इकाई, दहाई', 'गाँव का जोगी', 'बच्चों को सब बताऊँगी' यह बारह कहानियाँ संकलित की गई हैं। यह सभी कहानियाँ जैसा कि संग्रह के शीर्षक से ज़ाहिर है, गाँव-देहात की ही कहानियाँ हैं।

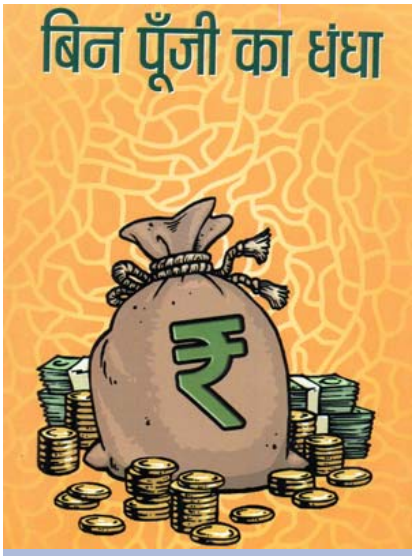

पुस्तक समीक्षा

बिन पूँजी का धंधा

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : अश्विनी कुमार दुबे

प्रकाशक : विद्या विकास एकेडेमी, नई दिल्ली

दीपक गिरकर, 28-सी, वैभव नगर,
कनाडिया रोड, इंदौर- 452016
मोबाइल : 9425067036
ईमेल: deepakgirkar2016@gmail.com

''बिन पूँजी का धंधा'' वरिष्ठ व्यंग्यकार श्री अश्विनी कुमार दुबे का आठवाँ व्यंग्य संग्रह है। इसके पूर्व इनकी व्यंग्य विधा पर 'घूँघट के पट खोल', 'शहर बंद है', 'अटैची संस्कृति', 'अपने-अपने लोकतंत्र', 'फ्रेम से बड़ी तसवीर', 'कदंब का पेड़', 'चुनी हुई 51 व्यंग्य रचनाएँ' पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है। इसके अतिरिक्त लेखक के चार उपन्यास (शेष अंत में, जाने-अनजाने दु:ख, स्वप्नदर्शी, हमारे हिस्से की छत) और एक कहानी संग्रह (एक और प्रेमकथा) प्रकाशित हो चुके हैं। मूलत: कहानीकार एवं उपन्यासकार होने के बाद भी व्यंग्य लेखन में दुबे जी की पकड़ मज़बूत है। अश्विनी कुमार दुबे के सारस्वत अवदान का आकलन करते हुए देश की प्रतिष्ठित संस्थाओं द्वारा इन्हें भारतेन्दु पुरस्कार, अंबिका पसाद दिव्य पुरस्कार और स्पेनिन सम्मान प्रदान किए गए हैं। देश के विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाओं में अश्विनी जी की व्यंग्य रचनाएँ निरंतर प्रकाशित हो रही हैं। व्यंग्यकार ने इस संग्रह की रचनाओं में वर्तमान समय में व्यवस्था में फैली अव्यवस्थाओं, विसंगतियों, विकृतियों, विद्रूपताओं, खोखलेपन, पाखण्ड इत्यादि अनैतिक आचरणों को उजागर करके इन अनैतिक मानदंडों पर तीखे प्रहार किए हैं। व्यंग्य लेखन में दुबे जी की सक्रियता और प्रभाव व्यापक हैं। व्यंग्यकार के समक्ष यह चुनौती होती है कि वह अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज की जीती-जागती तस्वीर पेश करे। इस दृष्टि से अश्विनी कुमार दुबे का व्यंग्य संग्रह बिन पूँजी का धंधा समय से संवाद करता हुआ दिखाई देता है। दूसरी पीढ़ी के वरिष्ठ व्यंग्यकारों ने अपनी व्यंग्य प्रतिभा से हिंदी गद्य व्यंग्य को ऊँचाई प्रदान की है उनमें अश्विनी कुमार दुबे का स्थान विशेष है। इन्होंने कथात्मक शैली में व्यंग्य को सरलता, पठनीयता प्रदान की है। अश्विनी कुमार दुबे जीवन के विभिन्न पहलुओं पर सामान्य प्रसंगों द्वारा विसंगतियों की तह में चले जाते हैं और कथा के माध्यम से विसंगतियों की गाँठें खोलकर पूरे परिवेश का चित्र उकेरते हैं और आम आदमी की व्यथा को प्रकट करते हैं। इस संग्रह की व्यंग्य रचनाओं में दुबे जी की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और कथ्य की गहराई दृष्टिगत होती है। इस व्यंग्य संग्रह की भूमिका वरिष्ठ व्यंग्यकार श्री प्रेम जनमेजय ने लिखी है। उन्होंने लिखा है ''अश्विनी कुमार दुबे मात्र व्यंग्यकार नहीं दृष्टिगत होते, वे मानव जीवन की बेहतरी की चिंता में ग्रसित एक चिंतनशील साहित्यकार दृष्टिगत होते हैं। वे विसंगतियों को कथा के माध्यम से अभिव्यक्त करने में यकीन रखते हैं। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में जहाँ एक ओर व्यंग्य अपनी अभिव्यक्ति के साथ रोचकता उत्पन्न करता

है वहीं कथा भी उत्प्रेरक का काम करती है। इधर व्यंग्य लेखन में जो प्रदूषण आ गया हैं, उसमें अश्विनी कुमार दुबे जैसे रचनाकारों की रचनाएँ आश्वस्त करती हैं कि व्यंग्य का भविष्य उज्ज्वल है।''

इस व्यंग्य संग्रह की कुछ रचनाओं बिन पूँजी का धंधा, सर, मुझे बाबा बनना है, हमारे गुरूजी में लेखक ने धर्म और धर्म के तथाकथित संरक्षकों की बखिया उधेड़ उनका विकृत और यथार्थ रूप हमारे सामने रखा है। अपनी इन रचनाओं के माध्यम से दुबे जी ने धर्म के प्रति पाखण्ड रचने वाले साधु-संतों, बाबाओं, समाज के ठेकेदारों को बेनकाब किया है और वर्तमान तथाकथित गुरुओं, बाबाओं को कठघरे में खड़ा किया है। बिन पूँजी का धंधा इस व्यंग्य संग्रह की प्रतिनिधि रचना है। सोहन एक ग़रीब किसान का पढ़ा-लिखा, मेहनत और प्रतिभाशाली बेरोज़गार युवक है। वह प्रथम श्रेणी में स्नातक है लेकिन उसे नौकरी नहीं मिली क्योंकि उसके पास किसी बड़े नेता की सिफारिश नहीं है और न ही इंटरव्यू कमेटी के सदस्यों को रिश्वत देने के लिए पैसा है। उसे एक बुज़ुर्ग ने सलाह दी कि तुम कोई धंधा शुरू करो, लेकिन सोहन ने उन बुज़ुर्ग से कहा कि उसके पास पूँजी नहीं है तो वह बिना पूँजी के धंधा किस प्रकार कर सकता है? उन बुज़ुर्ग ने राय दी कि तुम एक आश्रम खोल लो और तुम उस आश्रम के महंत, स्वामी या बाबा बन जाओ और फिर तुम्हारा बिन पूँजी का धंधा चल निकलेगा। सोहन को उनकी बातें सोलह आने सच लगीं किन्तु सोहन ने कहा मेरा आत्मविश्वास डगमगा रहा है इसलिए बिन पूँजी का और दूसरा धंधा बताएँ। उन बुज़ुर्ग ने सोहन से कहा राजनीति! - यह भी बिन पूँजी का धंधा है, परंतु ज़रा कठिन। यह व्यंग्य तथाकथित बाबाओं और वर्तमान राजनीति पर गहरा कटाक्ष है। हम कोई चेहरा उजला नहीं रहने देंगे व्यंग्य लेख में व्यंग्यकार ने चरित्र हनन के घिनौने खेलों पर दृष्टि डालते हुए लिखा है - सबके चेहरों पर कालिख पोतकर ही दम लेंगे हम। पाँव लागूँ कर जोरी व्यंग्य रचना में चाटुकारिता और चरण वंदना का महत्त्व दर्शाया गया है। आरक्षण और पंचायती राज व्यंग्य कथा में पिछड़ी जातियों के सरपंच और महिला सरपंचों पर कटाक्ष किया गया है। पिछड़ी जातियों के सरपंच गाँवों में पंचायत का हर काम गाँव के नंबरदारों, रसूखों से पूछकर ही करते हैं और पंचायत की चैकबुक गाँवों के इन रसूखों के पास रहती है। जिस गाँव में सरपंच महिला है वहाँ सरपंच पति ही पंचायत चलाते हैं और ज़िला कार्यालय में मीटिंग में भी सरपंच पति ही शिरकत करते हैं। भ्रष्टाचार मिटाने के सरल उपाय में लेखक ने प्रदेश के खेल मंत्री, शिक्षा मंत्री, युवा मंत्री, मुख्यमंत्री, वयोवृद्ध नेता और संस्कृति विभाग वालों के माध्यम से भ्रष्टाचार मिटाने के बहुत सारे रोचक उपाय बताए हैं। इस रचना में भ्रष्टाचार मिटाने के उपायों पर लेखक ने अपने चुटीले और नुकीले व्यंग्य बाण छोड़े हैं। फंड आया रे, आया रचना में लेखक ने दर्शाया है कि क्षेत्र में फंड आने पर नेता, ठेकेदार, सप्लायर, बिचौलिए, दलाल लोगों के घरों में और सरकारी कार्यालयों में किस प्रकार की बहार और रौनक आती है। संकलन की कुछ रचनाओं भैयाजी का षष्ठिपूर्ति महोत्सव, तैयारी शोकसभा की, शहर में साहित्य, सफलता में साहित्यिक व्यंग्य अभिव्यंजित हुआ है। भैयाजी का षष्ठिपूर्ति महोत्सव एक चुटीली व्यंग्य कथा है जो साहित्यिक आयोजनों, साहित्य के क्षेत्र में दिए जा रहे सम्मानों, पुरस्कारों की हक़ीक़त बयाँ करती है। इस व्यंग्य रचना में व्यंग्यकार के कौशल का अंदाज़ा इस रचना के छोटे से अंश से लगा सकते हैं। वे लिखते हैं - ''राजनीति में हर ऐरे-गैरे ने अपना षष्ठिपूर्ति महोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया। छोटों-छोटों के बड़े-बड़े ग्रंथ निकले। कवियों ने उचक्कों के लिए सुमधुर कविताएँ लिखीं। डकैतों को लेखकों ने ईमानदार शिरोमणि बताया। हत्यारों को संवेदनशील नेता कहा गया। जिन्हें साहित्य का ''स'' नहीं मालूम, उन्हें ही लोगों ने कवि और लेखक कहकर सम्मानित किया।'' तैयारी शोकसभा की व्यंग्य लेख में श्रद्धांजलि देने के तौर-तरीकों पर सवाल उठाते हुए आधुनिक बुद्धिजीवियों की सोच पर कटाक्ष किया है। शहर में साहित्य रचना वर्तमान साहित्य जगत् पर तीखा व्यंग्य है। इस रचना में व्यंग्यकार ने तथाकथित लेखकों द्वारा पुरस्कार प्राप्ति की छटपटाहट और नेताओं की चरणवंदना, साहित्यिक पत्रिकाओं के प्रकाशकों द्वारा अपनी पत्रिका के लिए सदस्य बनाने की आपाधापी, संपादकों की कामचालाऊ प्रवृत्ति इत्यादि विसंगतियों को भिन्न पात्रों द्वारा सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। सफलता व्यंग्य कथा साहित्य जगत् की वास्तविक स्थिति का दर्शन करवाती है। इस व्यंग्य रचना का अंत बहुत प्रभावशाली है। व्यंग्यकार लिखते हैं - सुनीताजी ने पूरी गंभीरता के साथ अपने जीवन का निचोड़ उसे बताया, ''दरअसल हर छपी हुई चीज़, रचना नहीं होती। रचना वह है, जिसे हम रचते हैं। अनुभव के रंग, भाषा का संतुलन और कल्पना की उड़ान से ही एक अच्छी रचना बनती है।'' इस रचना के माध्यम से लेखक ने नवांकुर लेखकों का मार्गदर्शन किया है। बड़े साहब का दौरा नौकरशाही और सरकारी तंत्र के अनेक पहलुओं को उजागर करने वाली व्यंग्य कथा है। भाषा का असर व्यंग्य में व्यंग्यकार ने नेताओं, गुंडों, गाँव के सीधे-सादे किसानों, ज़मींदारों, महाजनों, सरकारी अधिकारियों और साहित्यकारों की बोलचाल के तौर-तरीकों पर कलम चलाकर कटाक्ष किया है। राजधानी के बाबू एक ऐसी व्यंग्य कथा है जिसमें चार मित्रों ने राजधानी के बाबुओं से संबंधित अपने-अपने अनुभव सुनाए। इस कथा में बाबुओं के चरित्र का सटीक चित्रण है। ओलों की बरसात : एक चिंतन रचना गाँवों के कर्मयोगियों पर मज़ेदार तंज़ है। ओलों की बरसात से किसानों की फसलें ख़राब हुई। कुछ किसानों ने आत्महत्या कर ली लेकिन जैसे ही सरकार द्वारा घोषणा की गई कि बरबाद हुई फसलों का आकलन किया जाएगा और पीड़ित किसानों को सहायता राशि दी जाएगी वैसे ही पटवारियों, गाँव के पटेलों व महाजनों, सरकारी अधिकारियों, नेताओं और विपक्ष के नेताओं के चेहरे खिल गए। इस रचना में व्यंग्यकार कहते है ''जैसा कि मैंने कहा कि ठाकुर साहब गाँव में सबके दु:ख-सुख का ख़याल रखते हैं, वे भी कम संवेदनशील नहीं हैं। सबसे पहले वही रकबे लिखे गए, जो उन्होंने बताए। हरिया, माधव, होरी, झुनिया और रघ्घू जैसे चंद लोगों के भी नाम आए। पर उनके पास रकबा ही बहुत कम था, जितना नुकसान हुआ, पूरी ईमानदारी से

लिखा गया। किसी को मिलान करना हो तो इनके खेत कभी भी दिखाए जा सकते हैं। बिल्कुल सही-सही आकलन हुआ पूरे गाँव में। अब यह बात अलग है कि जहाँ ओले नहीं गिरे, वे खेत भी सूची में जोड़ लिए गए। परती भूमि और खाली पड़े खेतों में भी ओलों से हुए नुकसान को दर्शाया गया।'' यह व्यंग्य गाँवों के तथाकथित प्रतिष्ठित व्यक्तियों, अधिकारियों और नेताओं की कारगुजारियों और व्यवस्था पर प्रश्न-चिह्न लगाता है। कुछ मत देखो जंगल और खदान माफियाओं की पोल खोलता है। इस व्यंग्य रचना में लेखक लिखते हैं ''दहेज़ विरोधी क़ानून, हरिजन ऐक्ट और बलात्कार अधिनियम आदि धाराएँ समाज कल्याण के लिए बनाई गईं। परंतु आँकड़े ये बताते हैं कि इनमें सबसे ज्यादा शरीफ आदमियों को फँसाकर परेशान किया गया। ठीक वैसा ही हश्र आर.टी.आई. का हो रहा है।'' दास्तान-ए-दफ़्तर व्यंग्य कथा में लेखक ने ऑफ़िस का सजीव और प्रामाणिक चित्रण किया है। लेखक ने इस व्यंग्य रचना से सरकारी कार्यालयों के परिवेश और सरकारी कर्मचारियों-अधिकारियों की कार्यप्रणाली पर एक ऑफ़िस के माध्यम से तीव्र प्रहार किया है। इस रचना में भी व्यंयकार ने सूचना के अधिकार पर धारदार प्रहार किया है। इस रचना में वे लिखते हैं ''आजकल सूचना का अधिकार लागू है, हर दफ्तर के लिए यह एक जानलेवा बीमारी है। इससे आम जनता को कितना लाभ हुआ, यह तो नहीं पता, किंतु व्यक्तिगत दुश्मनी निकालने के लिए, किसी को किसी भी हद तक तंग करने के लिए, नित नई शिकायतें करते रहने के लिए, विघ्नसंतोषियों के हाथ में यह एक कारगर हथियार है।'' इसी रचना में वे आगे लिखते हैं ''उस दफ़्तर का बोर्ड नीचे की ओर बहुत किनारे की तरफ लगा था, इसलिए बाद में मुझे पता लगा कि वह मच्छर मारने वाले विभाग का दफ़्तर है। यों तो सभी ऑफ़िस मच्छर मारने के लिए ही खोले गए हैं। मच्छर अर्थात समस्याएँ !'' अतिक्रमण रचना में मीठी चुटकियाँ लेते हुए व्यंग्यकार ने लिखा है - ''सरकारी ज़मीन को हथियाना इस देश में हर किसी का जन्मसिद्ध अधिकार है।'' बाज़ारवादी संस्कृति में नेता व बिल्डर मिलकर एक तालाब के स्थान पर मॉल, सुपर बाज़ार बनाकर किस प्रकार पैसा बनाते है और आम आदमी इस व्यवस्था में किस तरह से असहाय और विवश है, इसकी रोचक और अद्भुत अभिव्यक्ति है एक तालाब की व्यथा-कथा। नेता सुतहिं सिखावहीं, आन धर्म जिनि लेऊ व्यंग्य रचना में दुबे जी राजनीति में विचारधारात्मक खोखलेपन, दोगलेपन और दुहमुँहेपन पर अपना सोटा चलाते हैं। हाथी के दाँत खाने के और, दिखाने के और कहावत चरितार्थ होती है व्यंग्य कथा नेपथ्य में। अनवर साहब जिस नैतिकता की बात अपनी रचनाओं में करते हैं वही नैतिकता के मानदण्ड उन पर लागू नहीं होते हैं। उनकी छोटी बेटी सईदा ने हाई स्कूल करके अपने पिता अनवर साहब की इच्छा के विरुद्ध कॉलेज में दाखिला ले लिया। खुले मुँह जींस पहनकर कॉलेज जाती है। अनवर साहब कहते हैं, ''लड़की बिगड़ गई है। उसे ज़माने की हवा लग गई है। ख़ानदान की नाक कटाएगी वह। सईदा ने बी.ए. में यूनिवर्सिटी टॉप किया। गोल्ड मैडल मिला उसे। टी.वी. पर अपने इंटरव्यू में उसने कहा, ''मुझे अपने पिता की कविताओं और कहानियों से आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली। मैंने उन रचनाओं को अपने जीवन में जिया है, इसलिए मैं आज यहाँ तक पहुँच सकी।'' अनवर साहब को सुनकर अच्छा तो लगा, परंतु वे सोचने लगे, इस लड़की का भविष्य अंधकार में है। भाग जाएगी ये किसी के साथ। नहीं करेगी मेरी पसंद के लड़के के साथ शादी। ख़ानदान में सब सुखी हैं। यह लड़की ज़रूर दुःख उठाएगी। या अल्लाह इस पर रहम करना ! यह रचना समाज के खोखले आदर्श, निराधार वर्जनाएँ और जबरन लादे गए निषेध जैसी सामाजिक विद्रुपताओं को सामने लाती है। गृह ज़िले में अफ़सर होने की पीड़ा, परीक्षाओं के दिन, बरात और मंत्रीजी, अहा ! ग्राम्य जीवन, ग़लत व्यवस्था में फँसा सही आदमी, हाथ मिलाते रहिए, मुझे भी सुरक्षाकर्मी चाहिए, इधर जाएँ कि उधर?, ये गरमी के दिन, आप किसके आदमी हैं? जैसे रोचक व्यंग्य अपनी विविधता का एहसास कराते है और पढ़ने की जिज्ञासा को बढ़ाते हैं। व्यंग्यकार ने इस संग्रह में व्यवस्था में मौजूद हर वृत्ति पर कटाक्ष किए हैं। राजनेताओं, प्रशासन और सरकारी कार्यालयों की कार्य शैली, भ्रष्टाचार, बाबाओं के पाखण्ड और अनैतिक आचरण, अंधविश्वास, बाज़ारवादी संस्कृति, सामाजिक कल्याण के अधिनियम की धाराओं से आम आदमी की फ़ज़ीहत, प्राकृतिक विपदा में सरकारी अनुदान की प्राप्ति पर सत्ता प्रतिष्ठानों द्वारा बंदरबाँट, सुरक्षा व्यवस्था, संपत्ति माफियाओं की कारस्तानियाँ, शिक्षा क्षेत्र में मुन्ना भाइयों का कमाल, आरक्षण, पंचायती राज व्यवस्था, अतिक्रमण, साहित्यिक जगत की विद्रूपताएँ इन सब विषयों पर व्यंग्यकार ने अपनी कलम चलाई है।

लेखक के पास सधा हुआ व्यंग्य कौशल है। अश्विनी कुमार दुबे की लेखन शैली सहज और शालीन है, लेकिन उनके व्यंग्य की मारक क्षमता अधिक है। लेखक को जो बातें, विचार-व्यवहार असंगत लगते हैं वे अपनी लेखनी से व्यंग्य लेखों, व्यंग्य कथाओं के माध्यम से राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, आर्थिक क्षेत्र से जुड़े सभी कर्णधारों को सचेत करते रहते हैं और पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर उन्हें झकझोर कर रख देते हैं। लेखक ने इस संग्रह की व्यंग्य रचनाओं में सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, आर्थिक समेत तमाम तरह की विसंगतियों, विडम्बनाओं पर करारा प्रहार किया है। आलोच्य कृति ''बिन पूँजी का धंधा'' में कुल 32 व्यंग्य रचनाएँ हैं। व्यंग्यकार अश्विनी कुमार दुबे के लेखन में पैनापन और मारक क्षमता अधिक है और साथ ही इस संग्रह की रचनाएँ काफी रोचक हैं। इस पुस्तक की सभी रचनाएँ पाठकों को समाज और देश में व्याप्त विसंगतियों, विडम्बनाओं पर सोचने को मजबूर कर देती हैं और पाठक की चेतना को झकझोरती हैं। अश्विनी कुमार दुबे इस व्यंग्य संग्रह की रचनाओं से पाठकों से रू-ब-रू होते हुए उन्हें अपने साथ लेकर चलते हैं, यही उनकी सफलता है। व्यंग्यकार का यह व्यंग्य संग्रह भारतीय व्यंग्य विधा के परिदृश्य में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करवाने में सफल हुआ है। यह व्यंग्य संग्रह सिर्फ पठनीय ही नहीं है, बल्कि संग्रहणीय भी है।

000

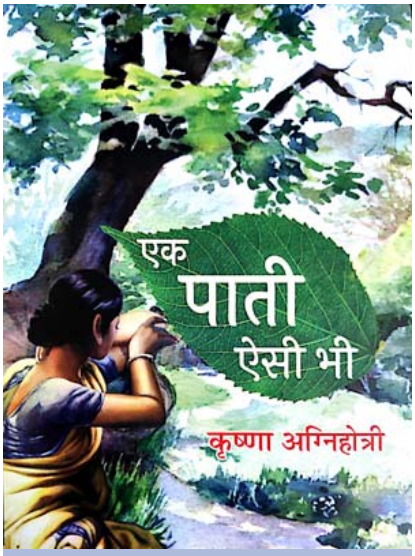

पुस्तक समीक्षा

एक पाती ऐसी भी

समीक्षक : डॉ. ऋतु भनोट
लेखक : कृष्णा अग्निहोत्री
प्रकाशक : अमन प्रकाशन, कानपुर

डॉ. ऋतु भनोट, 4486, दर्शन विहार,
सेक्टर-68, मोहाली-160062
मोबाइल: 9915224922

वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री का सद्य प्रकाशित कहानी संग्रह 'एक पाती ऐसी भी', सामाजिक और साहित्यिक परिदृश्य से जुड़े कई अहम सवालों को नए सिरे से टटोलने पर मजबूर करता है। प्रस्तुत कहानी संग्रह में तेरह कहानियाँ संगृहीत हैं। लेखिका ने लगभग सभी कहानियों में आम जन को दरपेश समस्याओं को बखूबी अभिव्यक्ति दी है। साहित्यकार जन-जीवन का चितेरा होता है और साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब। इस कसौटी पर कृष्णा अग्निहोत्री की कहानियाँ पूर्णत: खरी उतरती हैं। कथ्य की विविधता और भाषा शैली की वृहद् रेंज इन कहानियों की अन्यतम विशेषता है।

संग्रह की पहली कहानी 'ज़मीं न मिल सकी,' शहरों में आकर बसने वाले मज़दूरों की व्यथा-कथा है। थोड़े से पैसों के बदले इन मजदूरों के सपने खरीद कर शहर के ठेकेदार इन्हें एक ऐसे जीवन में धकेल देते हैं, जो नर्क से भी बदतर है। भैरव कुछ हसरतें लेकर अपनी पत्नी और बेटे के साथ शहर आया था लेकिन वहाँ कुछ ही महीनों में उसने कई-कई बार मृत्यु का सामना किया। उसे झूठे केस में जेल हुई, पत्नी दर-दर की ठोकरें खाकर अपना और बच्चे का पेट पालती हुई एक दिन चल बसी। उसकी अधखाई लाश के पास बैठा भैरव उसकी मृत्यु से दुखी कम था और उसकी मुट्ठी में दबे पाँच सौ रुपए का नोट पाकर खुश ज़्यादा था। कमोबेश कुछ ऐसी ही मन: स्थिति बच्चे की भी थी। ज़िंदा रहने की मजबूरी किसी भी भावना अथवा संवेदना पर किस कदर भारी पड़ती है, उक्त कहानी में बड़ी मार्मिकता से चित्रित हुआ है। कहानी का अंत प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'कफ़न' की याद दिलाता है। भैरव द्वारा अपने बेटे गोलू का हाथ पकड़ महानगर की भीड़ में खो जाना एक ऐसी कसक छोड़ जाता है जो कहानी की समाप्ति के बाद भी भीतर टीसती रहती है।

सोशल मीडिया की दिखावटी चकाचौंध और खोखले होते जा रहे रिश्तों के दौर में 'संतुष्टि' जैसी कहानी मानों एकबारगी हमें झिंझोड़कर जगाने का प्रयास करती है। पढ़ी-लिखी महिलाएँ पारिवारिक जीवन में सामंजस्य बिठा कर आने वाली पीढ़ियों के लिए एक आदर्श स्थापित करने के साथ-साथ पारिवारिक माहौल में प्रेम की मधुरता घोल उसे संस्कारों

से सँवार सकती हैं। कुंठा, निराशा, अकेलेपन और असहिष्णुता के इस दौर में परिवार ही एकमात्र ऐसी संस्था है जो मनुष्य को अवसाद की दलदल से बचाकर जीवन में सुख और संतोष का संचार कर सकती है।

'झुर्रियों की पीड़ा' और 'तोर जवानी सलामत रहे', वृद्ध-विमर्श का सशक्त उदाहरण हैं। आजकल की तेज़ रफ़्तार ज़िन्दगी में, परिवारों में वृद्धों की करुणाजनक, उपेक्षित स्थिति का मार्मिक आख्यान रचती यह दोनों कहानियाँ सोचने पर विवश करती हैं कि वृद्धों के चेहरे पर उतरती झुर्रियाँ, घर के जवान सदस्यों के मन पर सिलवटें क्यों डाल जाती है? शरीर से अशक्त होते ही बूढ़े घर-परिवार की नज़रों में खटकने क्यों लगते हैं? दो मीठे बोल के लिए तरसते इन दोनों कहानियों के वृद्ध स्त्री पात्रों की त्रासद स्थितियाँ कई अनुत्तरित प्रश्न पैदा करती हैं।

महानगरीय जीवन के एक दिन की गतिविधियों का विवरण प्रस्तुत करती कहानी 'एक सड़क ऐसी' किसी भी शहर का रोज़नामचा कही जा सकती है। शहरों में किसी पार्क के कोने में जुड़ बैठने वाले ज़्यादातर बुज़ुर्ग, बच्चों के हाथों शोषित हैं और उनका वार्तालाप उसी बिंदु पर केंद्रित रहता है। युवा पीढ़ी की दुनिया मोबाइल तक ही सीमित है, उनके आस-पास कुछ भी घटित होता रहे, उन्हें उसकी रत्ती भर फ़िक्र नहीं सताती। महानगरीय जीवन का प्रौढ़ व अधेड़ वर्ग जीवन की रफ़्तार से होड़ लगता, दौड़ता-हाँफता किसी तरह हालात से तालमेल बनाने की कोशिश में जुटा है, ऐसे में फिर भला कोई देश, समाज, संस्कारों अथवा नैतिकता की परवाह क्यों और कैसे करे?

इस संग्रह में संगृहीत 'दस्तबू' कहानी थोड़े अलग मिज़ाज की कहानी है। लेखिका ने साहित्य के वर्तमान परिदृश्य में एक स्वाभिमानी लेखिका 'जानकी' के साहित्यिक और निजी जीवन के संघर्ष और समस्याओं के निरूपण द्वारा साहित्यिक जगत् की खेमेबाज़ी, प्रकाशकों की मनमर्ज़ी, किसी गॉडफादर के वरदहस्त के बिना साहित्य जगत् में पैठ बनाने में दरपेश कठिनाइयों का जीवंत चित्रण किया है। यह एक कड़वी सच्चाई है कि भारतीय समाज में आज भी महिलाओं को स्वतन्त्र व्यक्ति या व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता। अत: महिला होने के नाते किसी भी क्षेत्र में अपनी जगह बनाने का संघर्ष कई गुणा कठिन और चुनौतीपूर्ण हो जाता है।

'एक पाती ऐसी भी' एक पुत्र द्वारा अपनी माँ के नाम लिखा गया ऐसा पत्र है जो नई पीढ़ी की दिखावापरस्ती, महँगी चीज़ों के प्रति उनके दुर्दम्य आकर्षण के बरक्स ग़रीब परिवार के बच्चों की कुंठा और हीनता को टटोलता है। हॉस्टल में रहने वाले ग़रीब परिवारों के छात्र कैसे तिल-तिल मर कर अपनी पढ़ाई पूरी करने और अपनी छोटी-छोटी इच्छाओं को मारने के लिए अभिशप्त हैं, इसका खुलासा प्रस्तुत कहानी में बखूबी हुआ है, कई नौजवान दिखावे की चकाचौंध से इतने निराश हो जाते हैं कि जीवन से ही हार जाते हैं, सपनों का टूटना, जीवन से हारने का पर्याय नहीं होना चाहिए। जहाँ सारे रास्ते बंद हो जाते हैं, वहाँ भी कोई न कोई गुंजाइश ज़रूर बची रहती है।

संग्रह की अगली कहानी 'कृष्णा भी तुममें ही थी' राष्ट्रप्रेम की भावना से ओत-प्रोत है जो राजस्थान की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत का ब्योरा प्रस्तुत करते हुए कई ज्ञानवर्धक तथ्यों से अवगत करवाती है। नरेंद्र गाइड के माध्यम से लेखिका ने युवापीढ़ी में दिनोंदिन घटती राष्ट्रभक्ति और बढ़ती मौजमस्ती को रेखांकित किया है। सीमा के चरित्र द्वारा युवाओं को ज्ञान व तकनीक की सही जानकारी और उसे देशहित में प्रयोग करने की प्रेरणा देने के संकल्प द्वारा दिशाहीन युवा वर्ग को सकारात्मक दिशा देने की पहल दर्ज की गई है।

'फिलहाल,' 'ज़िन्दगी व मौत' एवं 'एक लड़की प्यारी सी' कहानियाँ जीवन की आपाधापी के बीच प्रेम, समर्पण एवं सकारात्मकता का सन्देश देती हैं। हम सब आजकल एक ऐसी आभासी दुनिया में जी रहे हैं, जहाँ दिखाने के लिए सब कुछ है, लेकिन भीतर सब खाली है। रिश्तों की गर्माहट खो चुकी है, परिवार टूट रहे हैं, नैतिकता दरक रही है। ऐसे संक्रमण काल में यह कहानियाँ जीवन में आशा का संचार करते हुए आस्था और विश्वास का परचम लहराती हैं।

'ब्यूटी सैलून' कहानी आधुनिक लड़कियों की संकुचित सोच का खुलासा करते हुए स्त्री-मुक्ति की नवीन परिभाषा गढ़ने का प्रयास करती है। कुछ आधुनिक लड़कियाँ वैवाहिक ज़िम्मेदारियों को निभाना, बच्चों को जन्म देने और उनकी परवरिश करने को दकियानूसी होने की निशानी समझ कर अपने आप को एक ऐसे अँधेरे गर्त में धकेल देती हैं, जहाँ से बाहर निकलने का कोई उपाय नहीं होता। आधुनिकता के नाम पर स्वस्थ परम्पराओं का भंजन स्वयं स्त्री को ही कठघरे में खड़ा कर देता है, लेकिन एक वक्त के बाद न तो पश्चाताप का कोई औचित्य रहता है और न ही लौट कर जाने का कोई रास्ता ही खुला रहता है।

आजकल सबके पास जीवन जीने के साधन तो बहुत हैं लेकिन भावनाओं को जीने का समय किसी के पास नहीं। सब कुछ इंस्टेंट उपलब्ध है, और तो और रिश्ते भी इंस्टेंट होते जा रहे हैं। आज बने और कल टूटे। 'आधे घंटे का प्यार' कहानी आधुनिक पीढ़ी के इसी भावनात्मक संकट की बानगी है। प्रेम को सींचने का धैर्य किसी के पास नहीं। अवसरवादिता का बोलबाला है, ऐसे ही कुछ महत्त्वपूर्ण और समकालीन प्रश्नों को उजागर करती यह कहानी समय की नब्ज़ टटोलने का सार्थक उपक्रम है।

'एक पाती ऐसी भी' संग्रह की सभी कहानियाँ अपने विषय-वस्तु के कारण ध्यान आकर्षित करती हैं। यदि प्रूफ की अशुद्धियों की ओर थोड़ा ध्यान दिया जाता तो पुस्तक और बेहतर हो सकती थी। बहरहाल, इस कहानी संग्रह में दर्ज सभी कहानियाँ क़ाबिले- तारीफ़ हैं क्योंकि यह ज़मीनी सरोकार की कहानियाँ हैं, इस संकलन में लेखिका ने समकालीन युग की सभी महत्त्वपूर्ण समस्याओं को अत्यंत संवेदनशीलता से टटोलते हुए जहाँ जन-जीवन के प्रति अपनी साहित्यिक प्रतिबद्धता को प्रमाणित किया है; वहीं दूसरी ओर एक प्रबुद्ध और आत्मचेता नागरिक होने के नाते अपने सामाजिक दायित्व का निर्वहन भी किया है।

000

पुस्तक समीक्षा

कोचिंग@कोटा

समीक्षक : नवीन कुमार जैन
लेखक : अरुण अर्णव खरे
प्रकाशक : एपीएन पब्लिकेशंस, नई दिल्ली

नवीन कुमार जैन, डी-1/35 दानिश नगर होशंगबाद रोड, भोपाल (म.प्र.) 462026
मोबाइल: 8959534663

अरुण अर्णव खरे का हाल ही में प्रकाशित उपन्यास कोचिंग@कोटा अपने तरह का पहला अनूठा उपन्यास है जिसमें ऐसे मुद्दे उठाए गए हैं, जिनके बारे में हर किशोर उम्र के बच्चे और उनके अभिभावकों को जानना ज़रूरी है। आज की शिक्षा व्यवस्था में कोचिंग एक अनिवार्य तत्व की तरह शामिल हो चुका है। हर स्तर पर कोचिंग का महत्त्व बढ़ता ही जा रहा है। ऐसे में जीवन के निर्णायक दौर की पढ़ाई में कोचिंग और कोचिंग-संस्थानों की भूमिका पर लेखक अरुण अर्णव खरे एक सारगर्भित और उद्देश्यपरक रचना लेकर आए हैं जिसमें कोचिंग के लिए घर से दूर निकले बच्चों की कठिनाइयों, जीवन-संघर्ष, गलाकाट प्रतिस्पर्द्धा, विडम्बनाओं, काटने को दौड़ते एकाकीपन, सपने पूरे करने की चिंता, सपने टूटने की पीड़ा, एक-दूसरे को पीछे छोड़ने की होड़, उलझनों, शोषण, अवसाद, जीवटता, प्रेम, वात्सल्य, करुणा, त्याग और सच्ची दोस्ती का सटीक, कारुणिक और प्रेरक चित्रण है। अपनी भूमिका में लेखक ने स्वयं लिखा है – ''यह बात मुझे हमेशा उद्वेलित और सोचने पर विवश करती रही है कि किस तरह सोलह साल की उम्र का कोई किशोर अपनों से दूर रहते हुए जीवन की निर्णायक राह प्रशस्त करने के मिशन पर चल पड़ता है या कि उस राह पर उसे छोड़ दिया जाता है। बात जो भी हो –दोनों ही स्थितियों में उसके संघर्ष और मानसिक द्वंद्व को समझ पाना आसान नहीं है। कुछ बनने के सफ़र की यह यात्रा हर कदम पर नई चुनौतियाँ, नए चैलेंज पेश करती है जिसे अनुकूल बनाने की ज़िम्मेदारी नाज़ुक कन्धों पर होती है। मंज़िल पर पहुँचने का दवाब और असफलता का डर बेचैन किए रहता है। इस बेचैनी को समझने वाला और बिखरने के क्षणों में सँभालने वाला कोई अपना साथ नहीं होता तो इस यात्रा की मुश्किलें उसे भयभीत ज़रूर करती होगीं। मुश्किल भरे इन क्षणों से लड़ना और स्वयँ को सँभाल कर रख पाना जाँबाज़ी वाला काम है। कोचिंग लेने आए सभी बच्चे एक ऐसी रेस में शामिल हैं जिसमें सभी जीतना चाहते हैं। यह सच्चाई है कोचिंग संस्थानों की और हरेक को हमेशा इस सच्चाई से जूझना पड़ता है।''

उपन्यास की प्रस्तावना में वरिष्ठ कहानीकार सूर्यबाला का यह कथन ग़ौरतलब है कि यह उपन्यास कोचिंग और कोचिंग-संस्थानों की मार्मिक और आँखें खोल देनेवाली सच्चाइयों से रू-ब-रू कराता है लेकिन इसके साथ एक बहुत आश्वस्तिकर सच यह भी है कि परिस्थितियाँ कितनी ही प्रतिकूल हों, मानवीय मूल्यों की घुट्टी पीकर बड़े हुए व्यक्ति के पास सही चुनाव का विकल्प अवश्य रहता है।

उपन्यास का नायक समीर है जिसे दसवीं पास करते ही आई.आई.टी. की तैयारी के लिए घर से बहुत दूर कोटा भेज दिया जाता है। उसके पिता जो परिस्थितिवश स्वयं इंजीनियर नहीं बन सके थे, किसी भी तरह समीर को इंजीनियर बनाना चाहते हैं। किशोर वय का समीर कोटा जाकर कोचिंग लेने के लिए मानसिक रूप से ज़रा भी तैयार नहीं है लेकिन पिता की महत्त्वाकांक्षा उसे कोटा पहुँचा देती है। यह उसकी खुशकिस्मती है कि रहने के लिए वासवानी दम्पत्ति के घर में उसे जगह मिल जाती है जो अत्यंत सहृदय और भले लोग हैं। समीर धीरे-धीरे अपने आप को शहर की विषम परिस्थितियों और प्रतिस्पर्धा भरे कोचिंग के माहौल में ढालने का प्रयास करता है। मगर घर की याद, शुरूआती टेस्ट्स में अच्छा प्रदर्शन न कर पाने का दबाव और कुछ अप्रत्याशित घटनाएँ उसे अपना लक्ष्य पाने में कमज़ोर करते हैं। वह टूटना नहीं चाहता, खूब मेहनत करता है लेकिन वांछित फल नहीं मिल पाता।

ऐसे में समीर की दोस्ती होती है सहपाठी चित्रा से। समीर जहाँ सीधा-साधा लड़का है वहीं चित्रा नटखट, शरारती और समझदार लड़की है। चित्रा जहाँ टेस्ट्स में टॉप करती है वहीं समीर का प्रदर्शन साधारण ही था। चित्रा के मोटिवेशन से समीर का भी प्रदर्शन सुधरने लगा और कुछ महीनों में वह भी टॉप फाइव में आने लगा।

इसी बीच कुछ ऐसी घटनाएँ होती हैं जो दोनों को प्रभावित करतीं हैं। जैसे कोचिंग की ही छात्रा का सुसाइड करना, सर और छात्रा का प्रेम-प्रसंग, समीर के सीनियर संकेत की असहज गतिविधियाँ, अरविंद पाराशर का नर्वश ब्रेकडाउन होना, कोचिंग-संस्थानों का अपनी टीआरपी बढ़ाने का षड्यंत्र जैसी अनेक घटनाएँ कहानी को आगे बढ़ाती हैं और साथ ही चलता रहता है हर घटना का मानसिक विश्लेषण और उनसे सीखने व अप्रभावित बने रहने का प्रयास। ख़ैर समीर खुश था कि उसे मकान मालिक के रूप में अंकल आंटी की छत्रछाया और चित्रा जैसी दोस्त मिली, जो समीर को हर स्थिति के लिए तैयार करती है, समाज की सच्चाई से अवगत कराती है, सचेत करती है, डाँटती है, पुचकारती है और समीर के लिए ढाल बनकर खड़ी नज़र आती है।

त्योहारों पर समीर का घर आना-जाना होता है। मित्रों से मस्ती भरी मुलाकात होती है छोटी बहिन से स्नेहिल छेड़छाड़ चलती रहती है। शरीर में होते परिवर्तनों के बीच प्रेम की परिभाषा तलाशने का रोचक प्रसंग भी है। रिश्तेदारों की शादियों में शामिल न हो पाने का अफसोस समीर को सालता है तो दादी की असमय मृत्यु का मार्मिक प्रसंग उसे झकझोरता है। उसका यह सोचना कि ''एक परीक्षा पास करने के लिए और कितनी ऐसी परीक्षाएँ देनी होंगी मुझे'' आँखों को नम कर जाता है। चित्रा उसे दिलासा देती है। अंकल-आंटी भी प्रेरित करते हैं उसकी पुत्रवत् देखभाल करते हैं। चित्रा और समीर दोनों कोचिंग में अच्छा प्रदर्शन करते हैं। समीर के व्यक्तित्व में सकारात्मक परिवर्तन होता है और वह शर्मीले व दब्बूपन के खोल से बाहर आ जाता है।

दोनों आईआईटी मेंस का एग्ज़ाम अच्छी रेंकिंग के साथ पास कर लेते हैं। इसके बाद शुरू होती है एडवांस एग्ज़ाम क्लीयर करने की संघर्ष गाथा। अंततः संघर्ष और इंतज़ार की घड़ियाँ समाप्त होती हैं। टेस्ट देकर समीर सेंटर से बाहर निकलता है, चित्रा से फ़ोन पर पेपर के बारे में डिस्कस करता है उसे आश्वस्ति होती है कि वह और चित्रा अच्छी रेंकिंग के साथ पास हो जाएँगे। जब रिज़ल्ट आता है तो समीर का नाम पहले दो सौ छात्रों में होता है पर ये क्या चित्रा का नाम कहीं नहीं है। चित्रा फेल हो गई। समीर कई बार चित्रा से संपर्क करने की कोशिश करता है पर सब कोशिशें नाकाम रहीं। यहीं कहानी में ट्विस्ट है। क्या हुआ चित्रा के साथ जो वह एडवांस एग्ज़ाम क्वालिफाय नहीं कर सकी। समीर अपनी माँ के साथ चित्रा के घर जाता है दरवाज़ा खुलते ही वह जो देखता है उसे अपनी आँखों पर भरोसा नहीं होता ....। कहानी में क्या हुआ और आगे क्या होगा जानने के लिए उपन्यास कोचिंग@कोटा को पढ़िए। यह सस्पेंस सामान्य सस्पेंस नहीं है यह कुछ विशिष्ट है।

अरुण अर्णव खरे के इस उपन्यास को इंजीनियर बनने की इच्छा रखने वाले हर उस छात्र और उसके अभिभावकों को पढ़ना चाहिए। सबसे कम शब्दों में यदि इस उपन्यास की बात करनी हो तो वो हैं कहानी का सहज प्रवाह और अंत तक बाँधे रखने की क्षमता, रोचक भाषा और किशोरवय के संवाद और सबसे बढ़कर दोस्ती का ऐसा पवित्र जज़्बा जो ज़िन्दगी के उलझे समीकरणों को हल करने की राह सुझाता है। उपन्यास में आए कुछ रोचक प्रसंगों के संवादों की चर्चा करना चाहूँगा।

उपन्यास की शुरूआत ही समीर और चित्रा के बीच चुटीले संवादों से होती है। चित्रा दोस्ती का हाथ बढ़ाती हुए समीर से उसका नाम पूछती है और जब समीर नाम बताता है तो चित्रा ''मुझे मालूम है, लेकिन आपसे सुनना था'' कहते हुए ठठाकर हँस देती है। एक अन्य प्रसंग में चित्रा को पड़ोस में रहने वाला एक लड़का अक्सर छेड़ता है। रक्षाबंधन के दिन चित्रा ने उससे किस तरह बदला लिया, जब वह यह कहानी समीर को बताती है तो समीर कहता है - ''तुम तो सचमुच कलाकार हो''। उत्तर में चित्रा बोलती है - ''हाँ- हूँ, दीपिका पादुकोन से भी बड़ी वाली''। इसी तरह एक और अवसर पर समीर के रुष्ट होने पर चित्रा कहती है - ''अपुन महादेव मंदिर चलते हैं और वहीं बाबाओं के साथ धूनी रमाते हैं - हो गई कोचिंग फिनिश अपनी। अच्छा बता कौन सा बाबा बनेगा - औघड़ या नागा। तुझे दूसरों को नंगा करने का शौक है न... अच्छा जमेगा नागा बाबा बनकर... नंग-धड़ंग... और मैं औघड़ बाबा बनूँगी, मस्त मलंग... तू चिलम फूँकना और मैं मुर्दों की राख मलूँगी शरीर पर।'' और जब समीर क्लास में फर्स्ट आता है तो चित्रा कहती है - ''बच्चे ने पहली बार अपनी क्षमता के अनुसार प्रदर्शन किया है, मैं बहुत खुश हूँ, वर माँगो वत्स''। उत्तर में समीर कहता है - ''वर दो माते कि अब कभी आपसे आगे निकलने की हिम्मत ना करूँ'' और फिर चित्रा का यह कहना -''धत्त ये वर अस्वीकृत किया जाता है'', दोनों के बीच की केमिस्ट्री और पवित्रता को रेखांकित करता है।

समीर का यह सोचना कोचिंग संस्थानों में गलाकाट प्रतिस्पर्द्धा की सच्ची तस्वीर पेश करता है - ''यहाँ हर बच्चे को पता है कि वह एक रेस में शामिल है और स्टार्टिंग ब्लॉक पर दौड़ने के लिए अपनी पोज़ीशन लेकर खड़ा है।'' वहाँ पहुँच कर बच्चे समय से पूर्व बड़े हो जाते हैं। यह व्यथा समीर के इन शब्दों में व्यक्त होती है - ''मैं भी हो गया हूँ समय से पूर्व थोड़ा बड़ा... हर काम खुद करता हूँ, हर समय चौकस, चौकन्ना रहना पड़ता है... अपनी हर एक्टीविटी पर खुद ही नज़र रखनी पड़ती है... मन में हमेशा एक दवाब बना रहता है - हर समय प्रेशर सिचुएशन, टेस्ट में अच्छा करना है, समय के भीतर सारे प्रश्न हल करने हैं.... हर हाल में स्वयं को सिद्ध करना है, टूटना नहीं है, हर परिस्थिति में सीधा खड़ा रहना है।''

अरुण अर्णव खरे इंजीनियर रहे हैं अतएव उन्होंने इस फील्ड की बहुत सी बारीकियों और विसंगतियों को सहजता से बयान किया है। कुल मिलाकर यह उपन्यास अपनी विषयवस्तु के कारण पढ़ने की जिज्ञासा पैदा करता है और इसे अवश्य पढ़ा जाना चाहिए।

000

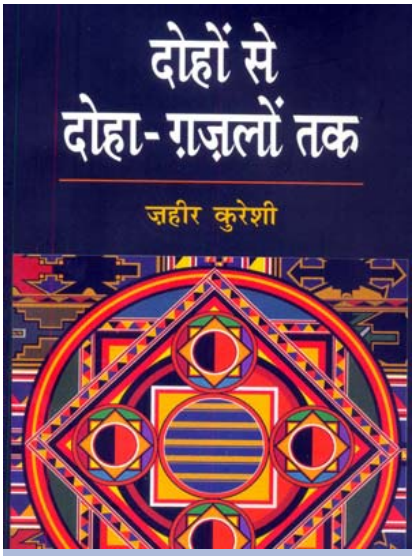

पुस्तक समीक्षा

दोहों से दोहा ग़ज़लों तक

समीक्षक : डॉ. मधुसूदन साहा
लेखक : ज़हीर कुरेशी
प्रकाशक : समन्वय प्रकाशन, नई दिल्ली

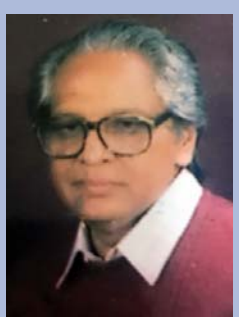

डॉ. मधुसूदन साहा, सौरभ सदन,
डी/90, कोयल नगर, राउरकेला-769014
(ओड़िशा)
मोबाइल : 09861564729,
08763907619

भारतीय वाङ्मय में दोहा प्राचीनतम काव्य-विधा है। आदि काल से अब तक इस विधा में अनेक कवियों ने समयानुसार स्वानुभूतियों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। सच पूछा जाए तो आज के काव्य-लेखन में दोहा और ग़ज़ल ही सबसे अधिक लोकप्रिय विधाएँ हैं। गागर में सागर भरने वाले इस छन्द के नये स्वरूप को देखकर पाठक विस्मय-विमुग्ध हो उठते हैं। इसीलिए उर्दू के बड़े-बड़े शायर भी हिन्दी में दोहा लिख रहे हैं।

काव्य की अन्य विधाओं से दोहे का कोई मुकाबला नहीं, इसीलिए दोहा छन्द साहित्य के नए क्षितिज तलाशने हेतु मुक्त गगन में नई उड़ान पर निकल चुका है। इसी उड़ान का सबसे ताज़ा और नया क्षितिज है ज़हीर कुरेशी की सद्य: प्रकाशित काव्य-कृति- 'दोहों से दोहा ग़ज़लों तक'। जिसमें समसामयिक सामाजिक परिवेश, आधुनिक जीवन की विसंगतियाँ, बाज़ारबाद, शाश्वत सत्य, मिथक, राजनीति, स्त्री-पुरुष संबंध, पर्व, आतंकवाद, युद्ध दर्शन, आध्यात्म और देश-प्रेम पर कुल मिलाकर चार सौ उनसठ दोहे और तीस दोहा ग़ज़लें संकलित की गई हैं। दोहा-छन्द में ग़ज़ल कहने का प्रयास एक ऐसे शब्द शिल्पी के हाथों हुआ है जो एक कुशल दोहाकार के साथ-साथ लब्धप्रतिष्ठित ग़ज़लगो भी हैं। दोनों काव्य विधाओं के कुशल कलाकार हैं ज़हीर कुरेशी, जिन्हें यह अच्छी तरह ज्ञात है कि आधुनिक दोहा और साम्प्रतिक हिन्दी ग़ज़ल समसामयिक, सामाजिक सरोकारों से पूरी तरह संबद्ध हैं। दोनों काव्य विधाओं में समय की सारी संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने की समान शक्ति सन्निहित है। ज़हीर जब दोहा लिखते हैं तो तमाम दोहाकारों में उनकी कहन भंगिमा सबसे अलग होती है। वे अपने दर्द के साथ-साथ दूसरों के दर्द को भी भली भाँति समझते हैं- 'इनकी अपनी पीर है, उनकी अपनी पीर/दुनिया पर की पीर को, समझे सिर्फ़ ज़हीर।'

दुनिया भर की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझना सबके बस की बात नहीं। हर इंसान को ज़िन्दगी जीने के लिए मुश्किलों के बीच रह कर ही जिजीविषा के लिए जद्दोज़हद करने की जरूरत पड़ती है। पारिवेशिक परिस्थितियाँ, सामाजिक विसंगतियाँ, सियासी षड्यंत्र, पारिवारिक संत्रास, मज़हबी संकट और पर्यावरणीय मजबूरियाँ आज के इंसान को हर कदम पर बेबसी और बेदिली की उस घाटी में धकेल देती हैं, जहाँ बंदूकों की खेतियाँ होती हैं और लाशों की फ़सलें उगायी जाती हैं। साक्ष्य हैं ज़हीर कुरेशी के ये दोहे-

बंदूकों की खेतियाँ, करते हैं जो लोग,
उनके ही वंशज करें, दंगों के उद्योग।
उस बस्ती में एक भी, वृक्ष नहीं छतनार,
पहले जो दो-चार थे, उन पर चली कुठार।
दो बेटों ने खींच ली, आँगन में दीवार,
किन्तु, किसी दीवार से, बँटे न माँ का प्यार।

रिश्तों के बीच दीवारें खड़ी करने वाले परिवार, लूटपाट और धोखाधड़ी में लिप्त समाज तथा बंदूकों की खेती करनेवाली राजनीति चाहे जितनी भी कोशिश कर लें, न माँ के प्यार को बाँट सकती हैं न इंसान के दिलों से मुहब्बत को मिटा सकती है। क्योंकि जिस इंसान की चाहत छोटी होती है और सोच बड़ी, वह अपनी चादर से अधिक पैर कभी नहीं फैलाता, अपने आप को सीमित साधनों से संतुष्ट रखता है। प्रत्येक इंसान की आख़िरी ज़रूरत होती है सिर्फ़ दो गज ज़मीन। इस शाश्वत सत्य को ज़हीर कुरेशी ने अपने एक दोहे में जिस कबीरी अन्दाज में अभिव्यक्त किया है, वह अपने आप में एक मिसाल है- 'सिर पर नीलाकाश है,

पैरों तले ज़मीन/दोनों को इन्सान से, कोई सका न छीन।'

इस छोटी-सी ज़रूरत की पूर्ति के लिए आदमी ज़िन्दगी भर किस प्रकार हाय-तोबा मचाए रहता है, उल्टे-सीधे काम करता है, अपने जज़्बात को गिरवी रखता है और ईमान को बेच डालता है तथा औरों के लिए जाल बुनते-बुनते एक दिन खुद अपने बुने हुए जाल में इस कदर फँस जाता है कि सीधा-सरल जीवन भी जंजाल बन जाता है- 'आजीवन बुनती रही, मकड़ी खुद ही जाल/ वो जाला ही बन गया, जीवन का जंजाल।'

कहते हैं कि सांकेतिकता ग़ज़ल की विशेषता होती, दोहा सपाट बयानी और दो टूक कहने में माहिर होता है। किन्तु ज़हीर के दोहे भी प्राय: शेर की सांकेतिकता के हुनर से लैस होते हैं- एक उदाहरण प्रस्तुत है- 'सीढ़ी दर सीढ़ी नहीं, चढ़ते हैं अब लोग/ऊपर जाने के लिए करें 'लिफ़्ट' उपयोग।'

'लिफ़्ट' शब्द का यह सांकेतिक प्रयोग कितनी आसानी से इस तथ्य को उजागर कर देता है कि जो शीघ्रातिशीघ्र शीर्ष पर पहुँचना चाहता है, वह सीढ़ियों के बजाय 'लिफ़्ट' यानी किसी 'गॉड फादर' की गोद तलाशता है।

यह अलग बात है कि कबीर ने तत्कालीन साहित्य के शीर्ष पर पहुँचने के लिए किसी सहारे की ज़रूरत महसूस नहीं की और धीरे-धीरे अनुभव की एक-एक सीढ़ी चढ़ते हुए इतनी ऊँचाई पर जा पहुँचे कि आज तक उनसे बड़ा न कोई संत हुआ न साधक, न साहित्यकार हुआ न दोहाकार। कबीर के दोहे भारतीय वाङ्मय की धरोहर हैं। ज़हीर ने अपने एक दोहे में इसे अभिव्यक्त करने का बड़ा अच्छा प्रयास किया है- 'दोहे कह कर आज तक, ज़िंदा संत कबीर/उस पथ पर ही चल पड़े, दोहाकार ज़हीर।'

संत कबीर के पथ पर चलने का संकल्प लेकर जब ज़हीर ने दोहा लिखना प्रारंभ किया तो ऐसे अनेक दोहे स्वयं लेखनी की नोक से काग़ज़ के पन्नों पर उतर आये जो कहावतों और मुहावरों की भाँति जन-जन की जुबान पर चढ़कर बोल रहे हैं।

प्रेम जीवन का शाश्वत तत्व है, इश्क और मुहब्बत शायरी की जान है और स्त्री-पुरुष का संबंध रोमानियत की सच्ची पहचान। ज़हीर ने कबीरी दोहों के साथ-साथ 'रूमान' के भी बड़े मोहक एवं मनोरम दोहे लिखे हैं जिनमें नारी की पीड़ा भी है और पुरुष की बेरहमी भी, पत्नी का समर्पण भी है और पति का शोषण भी, यौवन की खुली किताब भी है और लज्जाशीला के सांकेतिक जज़्बात भी। इन दोहों में दोहाकार ने सौन्दर्यबोध के साथ-साथ समाज में हो रहे बाल विवाह और बेमेल विवाह की पीड़ा को भी बड़ी मार्मिकता से दर्शाने की कोशिश की है- बूढ़े को ब्याही गई, एक कली कचनार, चिंगारी से पूछ मत, तन का हाहाकार। फूलों जैसी देह पर, पर्वत जैसा भार, खुश होकर अभिसारिका, कर लेती स्वीकार।

वस्त्रहीन होकर घुसे, करने लगे किलोल, जबरन ही पढ़ने लगे, नदिया का भूगोल। खुल कर भी, खुलते नहीं, नारी के जज़्बात, प्रणय- सेज पर भी करे, संकेतों में बात।

आतंकवाद और युद्ध की धमकियाँ आज का एकदम ज्वलंत सवाल है। ज़हीर कुरेशी जैसा सजग रचनाकार इस मुद्दे को कैसे नज़रअंदाज कर सकता है? उन्होंने अपने दोहों और दोहा-ग़ज़लों में इस सवाल को सही संदर्भों में उठाने और सुलझाने का सार्थक संकेत दिया है ।

हक़ीक़त तो यह है कि आजकल दंगे होते नहीं, बल्कि करवाए जाते हैं। क्योंकि वर्तमान राजनीति का मूलमंत्र है आपस में वैमनस्य बढ़ाओ और जलते तवे पर अपनी रोटी सेंको- 'राजनीति करती रही, फूट डाल कर राज/ इस छोटी-सी बात को, समझा नहीं समाज।'

यदि समाज इसे समझ पाता कि सारी समस्याएँ आपसी संवाद से सुलझ सकती हैं, यदि दीप से दीप जलाने की कोशिश की जाए तो आदमी और आदमी के बीच का अँधियारा आसानी से मिट सकता है। बस, इसके लिए दोनों दीपों को कदम-दर-कदम आगे बढ़ने के लिए पहल करने की ज़रूरत है, कबीर के ढाई आखर की सोच को अपने अन्दर बड़ी गहराई तक उतारने की आवश्यकता है, तभी तो ज़हीर कुरेशी कहते हैं- 'कितना अच्छा हो अगर, जलें दीप से दीप/यह संभव तब हो सके, आएँ दीप समीप।' ज़हीर कुरेशी के एक और दोहे की ओर मैं अवश्य सुधी पाठकों का विशेष ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा, जो हो सकता है जीवन-दर्शन के मुहावरे की तरह इस महादेश के लाखों पाठकों की स्मृति-मंजूषा में आसन जमा कर बैठ जाए। कहावत की शैली में क़दम-क़दम पर ज़िन्दगी में काम आए।

सब को लड़ने ही पड़े, अपने-अपने युद्ध,
चाहे राजा राम हों, चाहे गौतम बुद्ध।

अंत में, ज़हीर कुरेशी की दोहा-ग़ज़लों पर भी थोड़ी बात कर ली जाए।

ज़हीर कुरेशी की काव्य-साधना सचमुच दीप से दीप जलाने की साधना है, चाहे दोहा हो या दोहा-ग़ज़ल उनकी सोच की नदिया सदैव सद्भावों एवं सद्वृत्तियों के समन्दर में स्वयं को समर्पित करने के लिए ही अग्रसर होती रही है। 'दोहों से दोहा-ग़ज़लों तक' के इस सफ़र में भी उनका सरोकार इसी सोच को साकार करने में सक्रिय प्रतीत होता है। निम्न दोहा-शेरों की पंक्तियाँ इस कथन के प्रमाण हैं-

होते आखातीज पर, लाखों बाल-विवाह,
क़ानूनों की दुर्दशा, संविधान से पूछ।

सबके सम्मुख दान से, बढ़ता है अभिमान,
सच्चे सुख का रास्ता, गुप्त-दान से पूछ।

मजबूरी का फ़ायदा, खूब उठाते लोग,
पतिता के उद्धार में, खुद गिर जाते लोग।

राजनीति ने धर्म की, फैलाया उन्माद,
लोग अचानक हो गए, वहशीपन के साथ।

दोहे की देह में ग़ज़ल की आत्मा का यह कायिक प्रवेश ज़हीर कुरेशी का एक प्रयोगधर्मी प्रयास अवश्य है, किन्तु ग़ज़ल का बदला हुआ रूप शायद उन्हें ख़ुद भी रास नहीं आया। इसीलिए मात्र तीस-पैंतीस दोहा ग़ज़लें कहने के बाद वे पुन: अपनी पारम्परिक हिन्दी ग़ज़लों की दुनिया में लौट गये। उन्हें खुद ही यह महसूस होने लगा कि दोहा दोहा होता है और ग़ज़ल ग़ज़ल। दोनों के मिज़ाज में काफी अन्तर है। दोहा छन्द का बेबाकीपन अगर उसकी अपनी विशेषता है तो ग़ज़ल के अशआर की सांकेतिकता उसकी अपनी अस्मिता।

कुल मिलाकर, ज़हीर कुरेशी का संग्रह 'दोहों से दोहा ग़ज़लों तक' पठनीय और संग्रहणीय है।

000

पुस्तक समीक्षा

बेहतरीन व्यंग्य

लेखक : प्रभाशंकर उपाध्याय
किताबगंज प्रकाशन

चलो ! अब आदमी बना जाए

लेखक : सतीश श्रीवास्तव 'नैतिक'
प्रकाशक : नवजागरण प्रकाशन

समीक्षक : अरुण अर्णव खरे

अरुण अर्णव खरे, डी-1/35 दानिश नगर
होशंगबाद रोड, भोपाल म.प्र. 462026
मोबाइल : 9893007744
ईमेल : arunarnaw@gmail.com

प्रभाशंकर उपाध्याय आज के समय के महत्त्वपूर्ण व्यंग्यकार हैं। उनको न केवल व्यंग्य की गहरी समझ है अपितु वह व्यंग्य को इस सुरुचिपूर्ण ढंग से अनावृत करते हैं कि पढ़ने वाला चमत्कृत रह जाता है। उनकी व्यंग्य रचनाओं में ऐसे विषयों पर पढ़ने को मिलता है जिनके बारे में अक्सर ये सोचा जाता है कि इन विषयों पर व्यंग्य लिखा ही नहीं जा सकता। उन्होंने इन विषयों पर न केवल लिखा ही अपितु उनको इस तरह साधा भी कि बरबस ही वाह-वाह करने का मन होने लगता है। ये उनकी लेखनी की ताक़त है और उनकी अध्ययनशीलता का प्रमाण भी।

उनकी सद्य प्रकाशित कृति "बेहतरीन व्यंग्य" में उनके 34 व्यंग्य सम्मिलित हैं जिनका चयन सम्पादक प्रमोद सागर ने किया है। संग्रह में सम्मिलित रचनाओं में यद्यपि कथा-तत्व की प्रधानता वाली रचनाएँ अधिक हैं लेकिन निबन्ध शैली में लिखी गई रचनाओं को भी उचित स्थान मिला है।

संग्रह का पहला व्यंग्य "कहाँ गया स्कूल" उनका अति चर्चित व्यंग्य है जिसमें एक नवनियुक्त शिक्षक अपनी ज्वाइनिंग देने के लिए स्कूल शिक्षा विभाग के हर अधिकारी, कर्मचारी से स्कूल का पता पूछता है लेकिन कोई भी उसको स्कूल का पता नहीं बता पाता। संयोगवश उसकी भेंट एक पत्रकार से हो जाती है और दोनों तहसील के हर गाँव के नाम और मतदाता सूचियाँ तक खँगाल डालते हैं लेकिन उस नाम का गाँव नहीं मिल पाता। अन्त में जब रहस्य खुलता है तो सरकारी काम करने के तौर-तरीकों का पर्दाफाश होता है।

"नाश्ता मंत्री का ग़रीब के घर" में मंत्रियों के इस तथाकथित दिखावे वाली प्रवृत्ति पर जमकर कटाक्ष किया गया है। मंत्री जी के नाश्ते के लिए जिस ग़रीब के घर का चयन किया गया था वह इस बात से अति प्रसन्न था कि मंत्री जी उसके घर नाश्ता करने वाले हैं। उसकी स्थिति का वर्णन करते हुए लेखक लिखते हैं - "मंत्री जी की मेज़बानी का ख़्वाब देखता, हलाल होने वाले बकरे की मानिंद फूला जा रहा था।" और फिर वह किस तरह हलाल हुआ इसका आनन्द पूरा आलेख पढ़कर ही लिया जा सकता है। इसी शीर्षक से उनका पहला व्यंग्य संग्रह तकरीबन दस बस पूर्व आया था।

संग्रह की एक महत्त्वपूर्ण रचना "अश्वत्थामा का दंश" है जिसमें प्राचीन संदर्भों को वर्तमान से जोड़ते हुए व्यंग्य का ताना-बाना बुना गया है। इस रचना का लगभग आधा भाग प्राचीन घटनाक्रमों का एक तरह से पुनर्पाठ है लेकिन रचना का अंत बहुत रोचक और उल्लेखनीय बन पड़ा है। इसी तरह "गर चाणक्य बनें प्रधानमंत्री" भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखी गई रचना है लेकिन यह रचना लेखकीय हस्तक्षेप के कारण

''अश्वत्थामा का दंश'' जितनी प्रभावी नहीं बन पाई है और मुख्य स्वर कहीं खो गया सा लगता है।

संग्रह में सम्मिलित ''आह दराज, वाह दराज'', ''हेड ऑफ़िस महात्म्य'', ''वाह भई नूरबख्श'', ''बयानों की सेल'' व ''चंदागिरी'' रोचक और पठनीय रचनाएँ हैं। ''हेड ऑफिस महात्म्य'' में सूत जी द्वारा जिस तरह हेड ऑफ़िस की व्याख्या की गई है, वह रोचक बना पड़ा है। देखिए – ''हे तात ! जिस कार्यालय में उपस्थित कर्मचारियों से अधिक संख्या में कुर्सी-मेज़ें रिक्त दिखाई दें उसे हेड ऑफ़िस समझो। जिस ऑफ़िस का कर्मचारी आने वाले व्यक्ति से रूखा व्यवहार करे उसे ही मुख्यालय मानो। जिस कार्यालय में समस्याएँ अधिक उलझ जाएँ, हे शौनक, उसे ही हेड ऑफ़िस समझना चाहिए।''

''मजे यस मेन के'', ''अथ: डेली पैसेंजर्स गाथा'' और ''शांतता: ऑडिट चालू आहे'' में व्यवस्था तथा कार्यालयीन कार्यकलापों और विसंगतियों का दिलचस्प ख़ाका खींचा गया है। कुछ जाने-पहचाने उद्धरणों से लेखक ने यस मैन की सार्वभौमिकता और सर्वकालिक उपस्थिति को रेखांकित किया है। यस मैन की विशेषताओं के बारे में वह लिखते हैं – ''कुशल यश मैन कभी नुक़सान में नहीं रहता। वह अपने सरपरस्त का मूड देखता है और तदनुरूप व्यवहार करता है। चतुर यस मैना का आदर्श सुर होता है – मिले सुर मेरा तुम्हारा, तो सुर बने हमारा।''

''फिक्सिंग से क्या डरना प्यारे'', ''ऊँट भी खरगोश था'', ''एक अदद घोटला'' और ''हे खलनायक'' संग्रह की अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। ''हे खलनायक'' में वक्रोक्ति का बहुत अच्छा उपयोग हुआ है। फिल्मों में खलनायक के चरित्र-चित्रण के बहाने काफी श्रमसाध्य शोध किया गया लगता है।

समग्र रूप में देखा जाए तो प्रभाशंकर उपाध्याय की यह कृति एक पठनीय संग्रह है जिसमें सामान्य विषयों से परे हटकर कलम चलाई गई है। अनेक रचनाओं में उनके चिंतन और अध्ययनशीलता की झलक मिलती है। इस अच्छे और पठनीय संग्रह के लिए लेखक को कोटिश: बधाई।

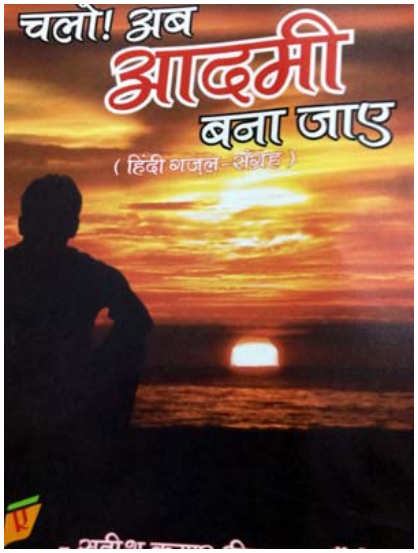

चलो ! अब आदमी बना जाए

सतीश कुमार श्रीवास्तव 'नैतिक' के ''चलो ! अब आदमी बना जाए'' ग़ज़ल-संग्रह में अलग-अलग मिज़ाज की कुल 84 ग़ज़लें संग्रहीत हैं। अधिकांश ग़ज़लों में उनके अंदर की बेचैनी मुखरित हुई है। उनकी यह बेचैनी नैतिक मूल्यों में गिरावट के कारण है, राजनीतिक धकोसलेबाज़ी से उपजी है, रिश्तों में तल्खियों की देन है, आमजनों की पीड़ा से उद्भूत है और मज़हबी दाँवपेंचों से जनित है। रिश्तों के खोखलेपन, शहरी जीवन की विसंगतियों, गाँव के जीवन के प्रति मोह और सच्चे प्रेम की ग़ज़लों में उनका एक अलग मिज़ाज ही देखने को मिलता है।

सियासी उठापटक के प्रति अपना आक्रोश वह इन शब्दों में व्यक्त करते हैं – ''जल रहा है मुल्क, जमकर रोटियाँ अब सेंकिए, राजनीति के लिए, माहौल चंगा हो गया।'' एक अन्य ग़ज़ल में वह कहते हैं – ''बोल मत बेबाक सच, वरना ग़दर हो जाएगा। कल कोई आरोप उल्टा, तेरे सर हो जाएगा। कल के क़ातिल आजकल के मंच के मेहमान हैं, छोड़ दे गांधीगिरी, वरना मर्डर हो जाएगा।''

जन-जीवन और सरकारी तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को मिल रही स्वीकृति से आहत हो वह लिखते हैं – ''वो तल्ख़ी और तेवर कुछ नज़र आता नहीं है अब, गरम मुट्ठी हुई होगी, लहू ठंडा हुआ होगा।''

इससे आगे भ्रष्ट-व्यवस्था पर तंज करते हुए वह कहते हैं – ''काग़ज़ पर सबको रोटियाँ, काग़ज़ पर सबको घर, काग़ज़ ही हर विकास का अब खाता-बही है।''

व्यवस्था के प्रति उनका मिज़ाज तल्ख़ तो है लेकिन वह निराशावादी नहीं हैं। वह ''एक संभावना के साथ सामने आते हैं – माना कि तेरे क़द के बराबर नहीं हूँ मैं। लेकिन किसी भी बात में कमतर नहीं हूँ मैं। सुई की तरह सिलता हूँ फटेहाल ज़िन्दगी, तेरी तरह तलवार या ख़ंजर नहीं हूँ मैं।''

शहरों की आपाधापी वाली जीवन-शैली भी उनको विचलित करती है। एक ग़ज़ल में उनके भावों की बानगी देखिए – ''मधुर रिश्ते नहीं मिलते हैं, अपनापन नहीं मिलता। तुम्हारे शहर के जीवन में अब जीवन नहीं मिलता।'' एक अन्य ग़ज़ल के शेर में वह मानवीय सारोकारों में आई गिरावट को लेकर खासे चिंतित लगते हैं – ''लाख बदल डाले चश्मे या खूब उजाला कर डालें, पर इन्सानों की बस्ती का हर चेहरा धुँधला सा है।''

गाँव का जीवन उन्हें लुभाता है। उसकी याद करते हुए वह कहते हैं – ''वो गाली गीत वो कजली वो सोहर याद आता है। मुझे इस शहर में मेरा गाँव अक्सर याद आता है।'' फिर अचानक निराशा घेर लेती है और यह कहने को वह मजबूर हो जाते हैं – ''इतिहास हो गए आँगन के खेल सारे, क्वार्टर के दायरे में अब घर सिमट रहे हैं।''

विद्रोह और बेचैनी के स्वरों के बीच कवि ने प्यार की ताक़त को कमज़ोर नहीं होने दिया है। उनका यह कथन काबिले ग़ौर है – ''मोम हो जाता है पत्थर प्यार से, प्यार से सारी समस्या हल करें। आप एक दिन आइना हो जाएँगे, पहले अपने आप को निश्छल करें।''

व्यवस्था में बैठे लोगों से वह असंतुष्ट भले हैं, दिल में बेचैनी भी है लेकिन हताश नहीं हैं। सतीश जी का यह पहला ग़ज़ल संग्रह अपने कहन की सहजता के कारण, गजल के मीटर और मानकों की कसौटी पर कमतर होने के बावजूद प्रभावशाली बना पड़ा है। इधर कुछ वर्षों में प्रकाशित हिंदी ग़ज़ल के अधिकांश संग्रहों में भी ग़ज़ल के मानकों के प्रति बहुत प्रतिबद्धता नहीं देखी गई है। इस लिहाज से यह ग़ज़ल संग्रह पठनीय है।

000

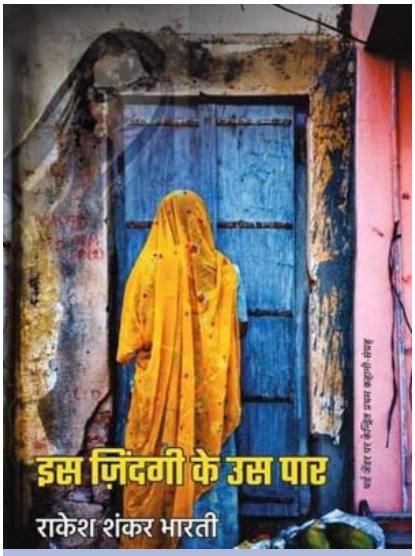

पुस्तक समीक्षा
इस ज़िन्दगी के उस पार

समीक्षक : संदीप 'सरस'
लेखक : राकेश शंकर भारती
प्रकाशक : अमन प्रकाशन,कानपुर

ज़िन्दगी के उस पार कहानी संग्रह का मुख्य पृष्ठ ट्रांसजेंडर की विडंबना से सीधा साक्षात्कार करता है। ऐसा अहसास होता है कि समाज के बंद द्वार के सामने वंचित शोषित उपेक्षित अभिशापित ट्रांसजेंडर वर्ग का कोई प्रतिनिधि खड़ा हुआ समाज से दरवाज़ा खोलने और स्वयं को स्वीकारने की अपील कर रहा है और भीतर से समाज ने अपनी दूषित मान्यताओं और पूर्वाग्रहों से उनके प्रवेश पर प्रतिबंध लगाते हुए द्वार बंद कर रखे हैं।

साहित्य जब समाज की विद्रूपताओं का पोस्टमार्टम करने लगे समाज के रिश्तों की विसंगतियों से मुठभेड़ करने लगे समाज के वंचित तबके की संवेदना से सीधा संवाद करने लगे, तो आप निश्चित मानें कि कलमकार अपने अभीष्ट में पूरी तरीके से सफल रहा। लेखक ने इस कहानी संग्रह में कुल ग्यारह कहानियों में किन्नर व समलैंगिक समुदाय की व्यथा को टटोलने का प्रयास किया है।

कहानी संग्रह से जुड़कर एक बात तो पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है कि राकेश शंकर भारती की क़िस्सागोई का कोई जवाब नहीं। उन्होंने ऐसे समाज पर कलम उठाने का साहस किया जिनके साथ सभ्य समाज के कथित लोग बैठना तो दूर उनकी चर्चा तक करना गुनाह समझते हैं।

पहली ही कहानी 'मेरे बलम चले गए' से आप संवेदना से सीधे संवाद जोड़ लेते हैं। प्रकृति के द्वारा दी गई किसी शारीरिक विकलांगता हेतु सामाजिक उपेक्षा और उपहास का दंश भीतर तक कितना आहत करता है यह तो सुशीला जैसा कोई किन्नर ही समझ सकता है। विकलांगता शरीर से भले ही हो लेकिन मन और सपने तो वैसे ही भरपूर होते हैं जैसे बाकी अन्य लोगों के। और इन सपनों के टूटने पर दर्द भी उतना ही होता है जितना और लोगों को। सुशीला किन्नर के बेहद जायज़ दर्द को लेखक ने बड़े सलीक़े से शब्दों से उभारने का काम किया।

दूसरी कहानी 'मेरी बेटी' का सबसे तकलीफदेह पहलू वह है जिसमें अपनी कोख से जन्म देने वाली माँ और उसका पिता ही उसे उपेक्षा और तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं और उसके जन्म के लिए भगवान् को दिन-रात कोसते हैं। यकीनन यह एक बड़ा सवाल है कि ट्रांसजेंडर यानी हिजड़ा समुदाय के लिए परिवार या दांपत्य जीवन में भले ही अवसर ना हों लेकिन समाज में उन्हें एक सम्मानित स्थान का हक तो उन्हें ईश्वर ने दिया है। जिसका हम निरादर नहीं कर सकते। लेकिन विडंबना यह है कि ऐसे बच्चों को 9 महीने पेट में रखने वाली माँ के दिल में ही जब उनके लिए प्रेम नहीं रह जाता तो बाकी समाज में उनके सम्मानजनक स्थान अपेक्षा ही बेमानी है। इस कहानी की पात्र राधिका शुरुआती झंझावातों से उबरकर एक परिवार के संरक्षण में पढ़ लिखकर डॉक्टर बन जाती है। लेकिन उसके अतीत का दर्द उसे सहज नहीं रहने देता और इस पीड़ा की साक्षी उसकी माँ अंततः उसके भी हाथों में दम तोड़ देती है।

तीसरी कहानी दयाबाई की पात्र अपने अंदर गुरु के साथ अपने अधूरे पन से कोसती हुई एक आखिरी ख़्वाहिश थी जिस परिवार में उसने जन्म लिया है उसे एक बार ज़रूर मिलें।

संदीप 'सरस', बिसवां, (सीतापुर), उप्र
मोबाइल : 9450382515,
9140098712
ईमेल : sandeep.mishra.saras@gmail.com

उनका गुरु उसको परिवार से मिलाता है मिलकर दयाबाई बेहद खुश होती है और परिवार के कहने पर अपने बड़े भाई की बेटी की शादी में आर्थिक मदद करती है और झूम कर नाचती गाती है उसकी शादी में। लेकिन तब उसका दिल टूट कर बिखर जाता है जब वह सुनती है कि उसका भाई किसी को बताता है इसे ग़ाज़ियाबाद से अच्छा पैसा देकर के नाचने के लिए बुलाया है।

चौथी कहानी रक्तदान की पात्र किन्नर विमला की व्यथा तो और ज़्यादा मार्मिक है। बचपन के यौन शोषण और प्रताड़ना से तंग आकर उसे अपना घर छोड़ना पड़ा। उसके लिए हैरत की बात यह है कि समाज के जो लोग सार्वजनिक रूप से उसके साथ बैठने से कतराते थे, वही बंद कमरों में उसके साथ शारीरिक संबंध बनाने के लिए लालायित रहते थे।

अन्य कहानी रामवृक्ष दादा की याद में, एक समलैंगिक व्यक्ति की व्यथा कथा को बेहद खूबसूरती से पिरोया गया है। ताउम्र एक अपराध बोध से ग्रस्त कहानी का नायक जब कानूनी मान्यता का अधिकार पाता है तब अपने अपराध बोध से मुक्त होता है।

एक और कहानी सौतन बेहद प्रभावी है। अपने पति और किराएदार पुरुष के आपसी समलैंगिक संबंधों से परेशान एक महिला की जद्दोज़हद को करीने से उकेरा है कथाकार ने।

फ्रेंड रिक्वेस्ट कहानी में भी ट्रांसजेंडर के अंतर्द्वंद को बखूबी उभारा गया और हारमोंस की गड़बड़ियों के शिकार दंपति के अतृप्त कामनाओं का सम्यक विश्लेषण किया गया है।

एक अन्य कहानी ट्रांसजेंडर में शालिनी भी इसी विसंगति की मृग- मरीचिका में जल बिन मछली की तरह तड़पती है। जबरन किन्नर बनाए जाने की घटनाओं को इस कहानी में बड़ी शिद्दत से उतारा गया है।

बधिया कहानी भी एक ऐसे ही जबरन ट्रांसजेंडर बनाए गए व्यक्ति की व्यथा कथा की दास्तान है।

तीन रंडियाँ कहानी भी एक ट्रांसजेंडर की संवेदना का खूबसूरत गुलदस्ता है। जो कि अपनी महिला वेश्या मित्र की नाजायज़ औलाद को माँ की तरह पालपोसकर उसका विवाह करती है।

'इस ज़िन्दगी के उस पर' एक लंबी कहानी है। देहव्यापार को रेखांकित करती यह कहानी किन्नरों की आत्मीय संवेदनशीलता और आपसी रिश्तों की मार्मिक पड़ताल का मुकम्मल दस्तावेज़ है।

सभी कहानियाँ पढ़ने के बाद निष्कर्षत: यह अकाट्य सत्य है कि प्रेम समाज की शर्तों पर नहीं संवेदना की शर्तों पर होता है। दरअसल क़ानूनी अधिकार मिलना और बात होती है और सामाजिक मान्यता मिलना है दूसरी बात होती है। जब तक समाज की सोच, समाज का व्यवहार और समाज की नैतिक मान्यताएँ रूढ़िवाद से पूर्वाग्रह से ऊपर उठकर सहज नहीं होती तब तक कोई क़ानून इस समस्या के व्यापक समाधान के लिए कारगर नहीं साबित हो सकता।

कुल मिलाकर अंतत: यह कहा जा सकता है कि राकेश शंकर भारती ने समलैंगिकों और ट्रांसजेंडर की ज़िन्दगी की जद्दोज़हद को बड़ी गहराई से महसूस किया और विमर्श के पटल पर एक साहसी कदम आगे बढ़ाया है। इस विषय पर पहले भी लिखा जाता रहा है आगे भी लिखा जाता रहेगा और निश्चित रूप से वंचित वर्ग के अधिकारों और सामाजिक स्वीकार्यता की कवायद एक ना एक दिन अवश्य रंग लाएगी।

मुझे पूरा विश्वास है कि भारती जी का यह कहानी संग्रह पाठकों, समीक्षकों के बीच बेहद लोकप्रिय होगा। लेखक बधाई के पात्र हैं उनका कहानी संग्रह व्यापक स्तर पर पढ़ा स्वीकारा जाएगा।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे।

-सादर संपादक मंडल

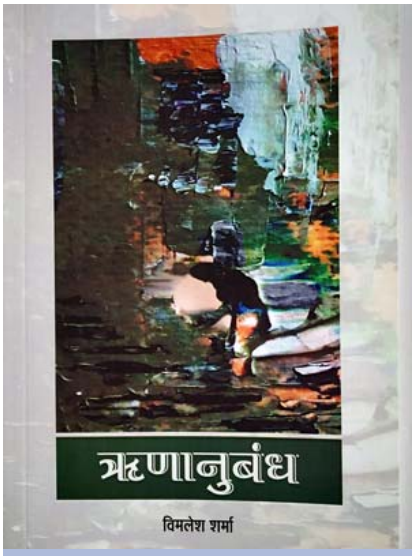

पुस्तक चर्चा

ऋणानुबंध

समीक्षक : सचिन तिवारी
लेखक : डॉ. विमलेश शर्मा
प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

साहित्य जीवन का पुन:पाठ है; परन्तु वह सार्थक तभी है, जब कई जीवनों का प्रतिबिम्ब हो। हिंदी भाषा व साहित्य की जिज्ञासु अध्येत्री एवं चर्चित कवयित्री डॉ. विमलेश शर्मा की सद्य:प्रकाशित काव्य कृति 'ऋणानुबन्ध' की कविताएँ इस अनिवार्यता का निर्वहन करती हैं। एक सौ सड़सठ पृष्ठीय इस काव्य-संग्रह के 'स्मृतिबन्ध', 'ककनूस पगडंडियों पर', 'सर्जनहार' और 'गद्य-गीत' नामक खंड में कुल छियासी कविताएँ समाहित हैं। काव्य व्यक्ति के मन की अभिव्यक्ति है। इसलिए उसमें निहित सत्य को हम वैयक्तिक धारणा भी कह सकते हैं। विमलेश जी ने इसे अपने जीवानुभवों से सींचा है। इसमें लोक के साथ-साथ प्रांजल शब्दों की बहुलता है। इस काव्य कृति को निश्चित ही पाठकों की सदाशयता प्राप्त होगी!

000

सचिन तिवारी, 21, वार्ड क्रमांक-4,
सुठालिया, जिला-राजगढ़ (मध्यप्रदेश) 465677,
फोन : 07374238503
ईमेल: sachintiwari2804@gmail.com

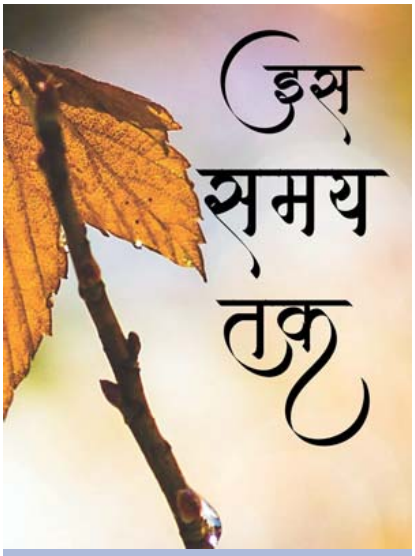

पुस्तक समीक्षा

इस समय तक

समीक्षक : डॉ. नीलोत्पल रमेश
लेखक : धर्मपाल महेंद्र जैन
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

नीलोत्पल रमेश, पुराना शिव मंदिर, बुध बाज़ार, गिद्दी - ए, जिला-हजारीबाग, झारखण्ड- 829108 मोबाइल : 9931117537, 8709791120
ईमेल : neelotpalramesh@gmail.com

पिछले दिनों प्रवासी भारतीय श्री धर्मपाल महेंद्र जैन का पहला कविता संग्रह 'इस समय तक' पढ़ने में आया। प्रकाशन के पहले वर्ष (2019) में ही इसके दूसरे संस्करण छपने एवं शांति-गया स्मृति कविता पुरस्कार के लिए चुने जाने की ख़बर से यह किताब चर्चा में रही। इस संग्रह में धर्मपाल महेंद्र जैन की 78 कविताएँ संकलित हैं। धर्म जैन कनाडा के टोरंटो शहर में 1998 से रह रहे हैं, इससे पूर्व पाँच वर्षों तक अमेरिका में भी रहे। प्रवासी भारतीय विश्व के अनेक देशों में रह रहे हैं और वे अपनी रचनाशीलता को कायम रख हिंदी साहित्य के भंडार को समृद्ध कर रहे हैं। आवश्यकता यह है कि भारतीय साहित्य में भी उनकी रचनाओं को प्राथमिकता से मूल्यांकित किया जाए, ताकि उनका लिखा सार्थक हो सके। इनका हिंदी साहित्य में उल्लेख किया जाना चाहिए क्योंकि प्रचुर मात्रा में हिंदी साहित्य विश्व के अनेक देशों में लिखा जा रहा है। वे रहते तो विदेश में है लेकिन उनकी अभिव्यक्ति भारतीय परिवेश को वर्णित करने में सफल हो रही है।

धर्मपाल महेंद्र जैन के कविता संग्रह 'इस समय तक' में कवि ने अनेक उप-शीर्षकों के माध्यम से कविताएँ लिखी हैं। वे उप-शीर्षक हैं - माँ, प्यार, बेटी, शब्द, मेरा गाँव, प्रकृति, सत्ता, आदमी।

'माँ मैंने देखा' कविता में कवि ने अपनी माँ को याद किया है कि किस प्रकार माँ ने मेरे हाथ को थाम कर शब्दों को लिखवाने की कोशिश की। वे शब्द अनगढ़ थे, फिर सुघड़ हो गए। कवि ने अपनी माँ को ईश्वर की अनंत लीला का सहयोगी कहा है। बचपन की स्मृतियाँ कवि के पास हैं, जैसे माँ का अँगुली पकड़कर चलाना, लोरियाँ सुनाना, शब्दों को आकार दिलाना आदि।

'चाहता तो मैं भी था' कविता में कवि ने कहा है कि मैं कठोर होना तो चाहता था, पर तुम्हें जान नहीं पाता। 'मेरी किताब हो तुम' कविता में कवि ने अपनी प्रिया को समझने-बूझने की कोशिश की है। वह किताब की तरह कभी अपनी प्रिया को उलट-पलट कर पढ़ना चाहता है ताकि वह प्यार के ढाई अक्षर को जान सके। 'बेटी के जन्म पर' कविता में कवि ने अपनी बेटी के जन्म के समय का मार्मिक चित्रण किया है। 'बार-बार लिख रहा हूँ' कविता में कवि ने शब्दों की सत्ता का वर्णन किया है। कवि को शब्द चैन की नींद भी नहीं सोने देते हैं। 'अंधेरे में टिमटिमाने' कविता में कवि ने शब्दों के वंध्या होने की बात की है। 'अकाल में' कविता में कवि ने अकाल की भयावह स्थितियों से पाठकों को रू-ब-रू करवाया है। 'पीढ़ी दर पीढ़ी' कविता में कवि ने अपने पिता को याद किया है। 'ओ चिड़िया' कविता में कवि ने चिड़िया के साथ मानवीय संबंधों की बात की है। 'धुंध में उँगली छूट गई तो' कविता में कवि ने प्रकृति के साथ मानवीय छेड़छाड़ के परिणाम स्वरूप घटित होने वाली घटनाओं की ओर संकेत किया है। 'उस समय से' शीर्षक कविता में कवि ने सत्ता के परिवर्तन को 'उस समय से इस समय तक' की बारीकियों को बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से वर्णित किया है। 'सत्ता की देह में' कविता में कवि ने देश की राजनीति में नेताओं की भूमिका पर सबसे बड़ा प्रश्न चिह्न लगाया दिया है। 'आधुनिकता का चेहरा' कविता में कवि ने बाज़ारवाद की गिरफ़्त में आती पीढ़ी की ओर पाठकों का ध्यान खींचा है।

'इस समय तक' की ये कविताएँ भी पाठकों को बाँधे रखने में सक्षम हैं - 'भोपाल : गैस त्रासदी', 'प्रार्थना कुबूल हो', 'मुझे तुम्हें वह लौटाना है', 'आस्था की ख़ातिर', 'रिश्तों के जाल में', 'नई पत्तियाँ आ रही हैं', 'साहबान!', 'बड़े भाई', 'भाषा बनने लगी हथियार', आदि। धर्मपाल महेंद्र जैन की कविताएँ भारत में लिखी जा रही कविताओं से किसी भी मायने में कमज़ोर नहीं है बल्कि उनके साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही हैं। भाषा, भाव, कहन और प्रतीक - सबकी दृष्टि से 'इस समय तक' की कविताएँ बेजोड़ हैं। पुस्तक की छपाई अच्छी है, प्रूफ की ग़लतियाँ नहीं है। इस अप्रवासी भारतीय कवि की कविताओं का हिंदी संसार में स्वागत किया जाना चाहिए व इनकी कविताओं की ओर पाठकों का ध्यान जाना चाहिए।

000

पुस्तक समीक्षा
कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न, कारण और निवारण

समीक्षक : शैलेन्द्र शरण
लेखक : शहरयार अमजद ख़ान
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

शैलेन्द्र शरण, 79, रेल्वे कॉलोनी, आनंद नगर खंडवा (म.प्र.) 450001,
मोबाइल : 8989423676,
फ़ोन : 0733-2248076,
ईमेल : ss180258@gmail.com,

शहरयार अमजद ख़ान की संपादकीय दृष्टि जब किसी विषय पर पड़ती है तो उस विषय को ख़ास बना देने का हुनर साफ नज़र आता है। विषय की नब्ज़ पर उँगली रखकर उसकी धड़कनों को पहचान लेना शहरयार की ख़ासियत है यह बात उनके संपादकीय लेखों में भी स्पष्ट नज़र आती है और उनकी यही दृष्टि इस महत्त्वपूर्ण विषय पर पड़ी तो उसने किताब का रूप रख लिया।

''कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न - कारण और निवारण'' विषय शहरयार ने रविंद्रनाथ टैगोर विश्व विद्यालय भोपाल से विधि में एल.एल.एम. करते समय चुना और उसे एक सारगर्भित पुस्तक का रूप दे दिया। यह किताब विधि के विद्यार्थियों के लिए जितनी उपयुक्त है उससे अधिक उन महिलाओं के उपयोगी लिए है जो नौकरीपेशा हैं, जो अपनी आजीविका के लिए कहीं काम करती हैं। चाहे सफ़ेद कालर जॉब हो या किसी कारखाने में अपनी सेवाएँ दे रही होती हैं।

यह किताब अकादमिक न होकर इस तरह लिखी गई है कि यौन उत्पीड़न के सारे आयाम बड़ी शिद्दत से खोलते चलती है। यौन उत्पीड़न क्या है ? समस्या की जड़ें कहाँ हैं? कार्यस्थल पर उत्पीड़न के ख़तरे क्यों और कहाँ हैं ? और वर्तमान स्थिति क्या है ? यह किताब कहीं से भी विधि के छात्र के लिए लिखी प्रतीत नहीं होती बल्कि एक अर्ध-साहित्यिक कृति प्रतीत होती है। प्रस्तावना में शहरयार लिखते हैं कि पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्रियों को बराबरी का दर्जा देने से हमेशा से परहेज़ किया है। स्त्रियों का पंख लगाकर पुरुषों के बराबर उड़ सकने के दृश्य ने पुरुषों को चुनौती दी और यही स्त्रियों के प्रतिकार का कारण बना। स्त्रियाँ कमज़ोर हैं, पितृसत्तातमक समाज ने यह बात स्त्रियों के मन में बचपन से ही भर दी और पुरुष इसी बात का हमेशा से फ़ायदा उठाता आया है। पिछले पाँच से दस वर्षों में कई कठोर क़ानून बनने के बाद भी स्त्रियाँ उन क़ानूनों का लाभ नहीं ले पा रहीं हैं, फलत: अच्छे परिणाम सामने नहीं आ रहे हैं। अधिनियन 2013 जो कि 24 अप्रैल 2013 से अस्तित्व में आया उससे कार्यस्थल पर महिलाओं के पक्ष में सुरक्षित वातावरण बना है और अब पुरुष क़ानून के भय से उत्पीड़न के बारे में सोचने से भी पीछे हट जाते हैं। बावजूद इसके प्रताड़ित महिलाएँ सामने आने से बचती हैं, उनके भीतर की स्वाभाविक और व्यवहारिक मुश्किलें उसे ऐसा करने से रोकती हैं क्योंकि अधिकतर मामलों में उत्पीड़क उसका अधिकारी ही होता है जिसके पास उपलब्ध शक्तियाँ उसके डर का कारण होता है। जबकि यौन उत्पीड़न एक पूरी प्रक्रिया है जिसे आरंभ होने के पहले ही रोका जाना अतिआवश्यक है। यौन उत्पीड़न से संबंधित जो आँकड़ें प्रस्तुत किए गए हैं वे भयावह हैं और बताते हैं कि उपलब्ध क़ानूनों और प्रावधानों का पूरी सजगता और पूर्ण ज़िम्मेदारी से पालन नहीं हो पा रहा है। इस किताब का अध्याय 2 ''यौन उत्पीड़न'' की व्याख्या करता है। समस्या की तह में जाकर उसे स्पष्ट करता है,महिलाओं के मन में बसे डर तथा लोगों के बीच इस समस्या के प्रति विचारों को बयाँ कर इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के दिशानिर्देशों से अवगत कराता हैं। इसी अध्याय में इस समस्या की वर्तमान स्थिति के सप्रमाण विवरण भी प्रस्तुत किए गए हैं। अध्याय तीन कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न को परिभाषित करता है। संबंधित सच्चाइयों से अवगत कराकर समाधान भी प्रस्तुत

करता है। भारतीय क़ानून में जिन 20 बिन्दुओं के तहत शिकायत दर्ज की जा सकती है उन बिन्दुओं का सिलसिलेवार विवरण इस अध्याय में है। सोशल मीडिया का दुरुपयोग कर किए जा सकने वाले उत्पीड़न से अवगत कराकर उनसे बचने के उपाय भी प्रस्तुत करता है तथा क़ानून प्रक्रिया की पूर्ण जानकारी इस अध्याय में उपलब्ध है।

अध्याय 4 में कामकाजी महिलाओं के यौन उत्पीड़न से संबंधित क़ानूनों का ब्योरा दिया गया है। ''कारख़ाना अधिनियम'' विशाखा बनाम राजस्थान, राजी एवं अन्य, तेजपाल मामला, वर्क-प्लेस बिल 2012 और प्रतिषेध और प्रतितोष अधिनियम 2013 की इस अध्याय में व्याख्या की गई है जो महिला उत्पीड़न निवारण के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

इस किताब के अंतिम दो अध्याय : 5 एवं उपसंहार रोचक तथा अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं, इसमें कुछ ऐसे प्रकरणों का विवरण प्रस्तुत है जिनके कारण देश के परिदृश्य में बरसों तक हलचल मची रही। बाल विवाह का विरोध करने पर 1982 में ऊँची जाती के सवर्ण पड़ौसियों के हाथों भँवरीदेवी के सामूहिक बालात्कार ने 1997 में विशाखा दिशा निर्देशों का रास्ता खोला और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस संबंध में महत्त्वपूर्ण दिशा निर्देश जारी किए गए। कुछ महत्त्वपूर्ण और चर्चित यौन प्रकरण भी किताब में दिए गए है जो सालों तक चर्चा का विषय बने रहे, जैसे रूपल देओल बजाज / के.पी.एस. गिल, अंजलि गुप्ता और तीन वायुसेना वरिष्ठ अधिकारी, एयर होस्टेस गीतिका शर्मा की ख़ुदकुशी, हरियाणा के मंत्री गोपाल काँड़ा प्रकरण, श्रेया वकील और विप्रो के एक्ज़ीक्यूटिव मनोज गंजा प्रकरण, इसके अतिरिक्त प्रोफ़ेसरों की नामजद लिस्ट भी पीड़िता राया सरकार ने फ़ेस बुक पर जारी की थी। ये कुछ ऐसे प्रकरण हैं जिनके कारण देश विचलित हुआ और यौन उत्पीड़न क़ानून में निरंतर परिवर्तन किए गए। किताब में भोपाल के डॉ. आर.एस. परिहार प्रकरण का भी पूर्ण विवरण है। आर. के. पचौरी प्रकरण देश के सबसे संभ्रांत व्यक्ति के खिलाफ यौन उत्पीड़न का प्रकरण है क्योंकि डॉ. पचौरी को 75 वर्ष की उम्र में उल्लेखनीय कार्य करने पर ''नोबल'' पुरस्कार मिला था। पुस्तक में यौन उत्पीड़न के संबंध में विशेषज्ञों की राय को भी शामिल किया गया है जिन्होंने विभिन्न प्रकरणों में वैज्ञानिक, व्यावहारिक, मनोवेज्ञानिक, सामाजिक, विधिक, चिकित्सकीय और क्लिनिकल दृष्टिकोण से इस संबंध में अध्ययन किया और परिणाम प्रस्तुत किए हैं। यह परिणाम भी चौंकाने वाले हैं। एक अध्ययन कहता है कि कार्यस्थल पर उत्पीड़न की शिकार महिलाएँ अपनी शिकायत लेकर आने से हिचकती हैं और लिखित शिकायत दर्ज करने को तैयार नहीं होती हैं। जो शिकायतें दर्ज होती हैं उनके लिए आम धारणा यह है कि इन शिकायतों में ज़्यादातर पुराना हिसाब चुकता करने की गरज से की जाती हैं। यह भी धारणा है कि राजीखुशी का मामला बुराई होते ही शिकायत में तब्दील हो जाता है। जबकि इस संबंध में सुधार अधिनियम 2013 महिलाओं को पूर्ण क़ानूनी सुरक्षा प्रदान करता है।

कुल मिलकर यह किताब आज की एक ज़रूरी किताब है जिसमें महिलाओं के साथ कार्यस्थल पर यौन शोषण जैसे संवेदनशील और ज्वलंत विषय पर प्रत्येक बिन्दुओं पर विचार किया गया है। यह किताब उपलब्ध क़ानून की जानकारी उपलब्ध कराती है और कामकाजी महिलाओं के मन-मस्तिष्क से यौन उत्पीड़न के ख़िलाफ़ बरसों से व्याप्त भय को समाप्त करती है तो दूसरी तरफ इस उपयोगी पुस्तक को ऑफ़िस या कार्यस्थल की टेबल पर नुमाइश के तौर पर रखकर पुरुष सहकर्मियों के मन में डर पैदा भी किया जा सकता है। शहरयार अमजद खान को उनकी प्रथम कृति के लिए बधाई।

000

शिवना साहित्यिकी सदस्यता प्रपत्र

यदि आप शिवना साहित्यिकी की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है :
1500 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा शिवना साहित्यिकी (SHIVNA SAHITYIKI) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को शिवना साहित्यिकी के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण इस प्रकार है :
Name of Account : **Shivna Sahityiki**, Account Number : **30010200000313**, Type : **Current Account**, Bank : **Bank Of Baroda**, Branch : **Sehore (M.P.)**, IFSC Code : **BARB0SEHORE** (Fifth Character is "Zero")
(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)
सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:
नाम :— — — — — — — — — — — — — — — **डाक का पता :**— — — — — — — — — — — — — — — —
— — — — — — — — — — — — —**सदस्यता शुल्क :**— — — — — — —**चैक / ड्राफ़्ट नंबर :**— — — — — — — — —
ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र किया है) :— — — — — —**दिनांक :** — — — — — — — — — — — — —
(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)
संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545
मोबाइल : 09806162184 (शहरयार अमजद ख़ान), ईमेल : shivnasahityiki@gmail.com

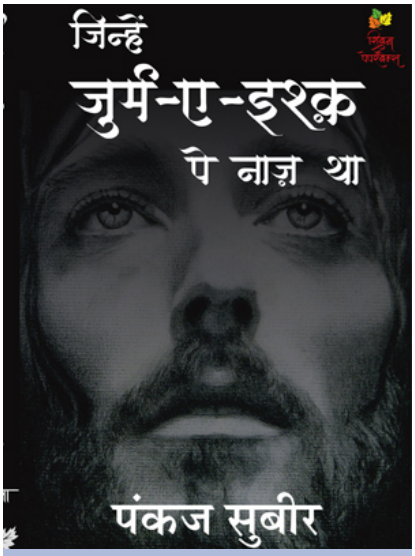

शोध आलेख

जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था

समीक्षक :
जुगेश कुमार गुप्ता, प्रतिभा सिंह, डॉ. रश्मि दुधे
लेखक : पंकज सुबीर

जुगेश कुमार गुप्ता

जो इतिहास में दफ़न है वो वर्तमान में आकर हिसाब चुकता करने की माँग करता है। ऐसा किसी अहिंसावादी विचारधारा के मन में नहीं आता वरन् ये उग्र धार्मिक विचारधारा की सोच है। ग़लतियाँ सदियों से होती रही हैं आगे भी न जाने कितनी ग़लतियाँ की जाएँगी लेकिन जो हो चुका है उसका रोना अगर अभी तक होता रहेगा तो सभ्यता का विकास विनाश में बदल जाएगा। जिसके लिए सारे सुधार कार्य किए जा रहे हैं असल में देखा जाए तो उनके लिए काँटे बोए जा रहे हैं, जो काम पहले के सामंती विचारों ने किया था वही काम आज रूढ़िवादी धार्मिक उन्माद के ज़रिए करने की सफलतम कोशिश जारी है। सदियों पहले धार्मिक कट्टरताओं ने इस सभ्यता से मानवता की जड़ें हिलाकर लोगों के दिलों में दरार पैदा की है। अपने समय में बनाए गए नियम क़ानूनों के ज़रिए आधुनिक समाज में पल रहे स्वतंत्र विचारों का गला रेता जा रहा है। लोगों में हिंसक भावना का ज़हर पूर्ववर्ती सुधारों के जरिए भरा जा रहा है। जिसने भी यह कार्य किया वह घृणित किया है लेकिन अब इस सभ्यता को उन कार्यों की कीमत चुकानी पड़ रही है। यही आगे भी होना तय है, जो आज हो रहा है। आने वाली पीढ़ी आज हो रहे अत्याचार की कीमत लेने के लिए तैयार हो रही है। ग़लतियों की कीमत अगर पिता से पूरी नहीं हो पा रही है तो बाप से लेने की होड़ बहुत कुछ नष्ट करने की राह पर खड़ी है। विज्ञान की इतनी तरक्की के बाद भी धार्मिक अंधविश्वासों का बोलबाला बढ़ता ही जा रहा है। ऐसा अपने से नहीं हो रहा है, सच कहा जाए तो यह एक मिशन के तहत दिलों को बाटने और उस पर राजनीतिक रोटी सेंकने का इंतज़ाम है। ''धर्म असल में ज्ञान के रास्ते की सबसे बड़ी बाधा होती है क्योंकि धर्म का काम ही अज्ञानता से चलता है।''

'जिन्हें जुर्म- ए- इश्क़ पे नाज़ था' आधुनिक संदर्भ में सांप्रदायिक घटनाओं के निर्माण और उससे होने वाली त्रासदियों की बेजोड़ व्याख्या करता है। इसमें राजनीति, अहिंसा, धार्मिक कट्टरता, व्यक्तिवादी सोच, मित्रता, सुसंगतता, नैतिकता, संस्कृति और प्रशासनिक हस्तक्षेप का स्वरूप स्पष्ट करता है। अक्सर हम देखते हैं कि साहित्य में विषय के आधार

पर दिशा निर्देश तो बहुत दिया जाता है लेकिन उसके निवारण के सही रास्ते नहीं मिल पाते। समाज में ख़त्म हो रही संवादहीनता जो दूरी का मुख्य कारण बनती जा रही है। जहाँ अभिव्यक्ति के रास्ते बन्द कर दिए जाते हैं, जहाँ संवादों की संस्कृति धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही है, ऐसी स्थिति में उपन्यासकार पंकज सुबीर का यह तीसरा उपन्यास 'जिन्हें जुर्म- ए- इश्क़ पे नाज़ था' बहुत ही कारगर रौशनी लेकर आया है। जो चेतना, तर्क, संवाद, विज्ञान, सिद्धांत और इतिहास से जुटाए गए साक्ष्यों के माध्यम से घटना क्रम को आगे बढ़ाता है। देश में जिस तरह का माहौल तैयार किया जा रहा है, उससे निपटने के लिए साथ ही अपने आने वाली पीढ़ी को इस उग्र मानसिकता से बचाने के लिए यह उपन्यास एक सार्थक कदम साबित होगा।

भौतिकतावादी चमक में किताबें हाथों से दूर होती जा रही हैं। समय की होड़ बहुत कुछ तोड़ रही है जिसमें पढ़ने की यह संस्कृति बहुत हद तक प्रभावित हो रही है। तथ्यों की मूल प्रति में फेर बदल कर उसको अपने हिसाब से बनाया जा रहा है। समय की पाबंदी और संकुचित मानसिकता किसी भी तथ्य को आँख मूँद कर स्वीकार करती आगे बढ़ रही है। जब तथ्यों को धर्म से जोड़कर परोसा जाता है तो आग में घी का काम करती है। धीरे-धीरे यही धार्मिक रूढ़ियाँ नशे के रूप में लोगों की नसों में बहने लगती हैं। जिसने दुनिया में आँखें भी नहीं खोली है उसके लिए एक ऐसी दुनिया का निर्माण कर रहे हैं जहाँ जन्म लेने के बाद उसके कोरे मन पर छपने वाली सामग्रियाँ बहुत ही भयानक हैं। अगर इन्हीं उन्मादों और कहर बरपाती फिज़ाओं में पल कर वह जब युवा होगा तब वह समाज के लिए क्या योजना बनाएगा। क्या वह किसी दूसरे धर्म को सम्मान की नज़र से देख पाएगा? क्या उसके लिए मानवीयता किसी धर्म से ज्यादा ज़रूरी लगेगी? क्या वह विज्ञान की भाषा समझ कर लोगों को बता पायेगा? इस पल-पल बदलती दुनिया की भीड़ में वह भी किसी उन्मादी भीड़ का हिस्सा बन कर राजनीतिक गतिविधियों के इशारे पर घृणित कार्यों को अंजाम देगा।

धार्मिक उन्मादी वही बनते हैं जिनके अन्दर खुद से सोचने समझने का संस्कार विकसित नहीं किया जाता है, जो तर्क को नकारते हैं। जिनको विज्ञान की आभासी दुनिया सत्य लगती है और धार्मिक प्रतिष्ठान ज़रूरी।

ऐसा प्राय: देखा जाता है जब इतिहास के चरित्रों के साथ छेड़छाड़ की जाती है। जो विचार समाज को प्रेरित करते हैं, जो सभी को एक साथ लेकर चलने का प्रयास करते हैं, जो धर्मनिरपेक्ष होकर सभी कौमों की एक साथ भलाई की बात करते हैं उन्हें ही दुश्मन के रूप के प्रचारित किया जाता है। 'जिन्हें जुर्म- ए- इश्क़ पे नाज़ था' में कुछ महत्वपूर्ण चरित्रों से संवाद स्थापित किया गया है जिसमें गोडसे, जिन्ना और महात्मा गांधी से आज़ादी के बाद बटवारे को लेकर पक्ष रखा गया है। जिसका तात्पर्य तात्कालिक राजनीतिक परिस्थिति को समझना और सही तथ्यों को सामने लाना है। आज भी देश को विभाजित करने का मिथक गांधी जी के ही सर जाता है। गांधी जी की मृत्यु हुए इतने साल गुज़र चुके हैं लेकिन हिंसक और कट्टर लोग आज भी उनका पुतला बना कर मारते आ रहे हैं। जो व्यक्ति पूरे जीवन अहिंसा का पुजारी बना रहा। जिसने लाठी का प्रयोग सिर्फ अपने सहारे के अलावा और किसी के लिए नहीं किया उससे किसी को क्या ख़तरा हो सकता है। लेकिन उनकी हत्या उनके ही धर्म के लोगों द्वारा की गई, इसी तरह मुस्लिमों के नेता जिन्ना को भी उनके ही लोगों ने अभाव में मार डाला। हत्या हमेशा अपने ही पक्ष के लोग करते हैं।

अहिंसा और धर्म को लेकर एक बेहतरीन दर्शन इस उपन्यास में देखने को मिलता है। कई अनुश्रुतियों के आधार पर तर्कहीन धार्मिक मान्यताएँ जो खुद को स्थापित करने और वर्चस्व बनाए रखने के लिए कट्टर होती गईं। कट्टरता किसी भी स्थिति में मानवता के लिए सार्थक नहीं है। ''असल में धर्म शब्द ही कट्टरता पैदा करता है। यदि आप धार्मिक हैं, तो यह भी तय है कि आप कट्टर भी होंगे ही। धर्म आपके जीवन की स्वतंत्रता को छीनकर आपको केवल एक दिशा में दौड़ने को बाध्य करता है। यह जो एक ही दिशा में दौड़ने की बाध्यता है यही तो कट्टरता है।'' बड़ी आसानी से कह दिया गया कि धर्म के आधार पर अपना अपना मुल्क चुन लिया जाए, लेकिन विस्थापन का दर्द वही समझ सकते हैं जो विस्थापित हुए हैं। मुहाजिर कह कर सहानुभूति पर जीवन फिसलता रहता है। इस दर्द को समझते हुए गांधी जी ने दिलों के बटवारे को रोकने का भरसक प्रयास किया लेकिन..!

आज मॉब लिंचिंग की घटना इतनी बढ़ चुकी है जिससे समाज के हर वर्ग को निशाना बनाया जा रहा है। भीड़ की कोई शक्ल नहीं होती उसी का फायदा उठा कर ऐसी घटनाओं को अंजाम दिया जा रहा है। ''यह भीड़ उन लोगों से मिलकर बनी है जो सामान्य आदमी के रूप में जो सरकारी कार्यालयों में जाते हैं तो प्रताड़ित होकर परेशान होकर रिश्वत खिला कर लौटते हैं।''

उपन्यास में सत्य की कीमत चुकाने की भी बात की है जो जिसमें ख़लील जिब्रान के शब्दों का सहारा लिया गया है - ''सत्य जानने की चीज़ है बोलने की नहीं क्योंकि इस दुनिया को सत्य की आवश्यकता ही नहीं है। अगर आप सत्य कहने की कोशिश करोगे तो एक दिन मारे जाओगे।'' दंगे की वास्तविक छवि के पीछे का ज़िम्मेदार कारक कोई व्यक्तिगत कारण होता है। आज तक कहीं भी दंगे हुए हैं उनके शुरू होने का कारण व्यक्तिगत ही रहा है उसे बाद में धार्मिक बना कर सांप्रदायिक दंगे का स्वरूप प्रदान किया जाता है। ज़रूरत है अपने समय को पहचानने और उससे निपटने के लिए साहित्य में इस तरह की रचनाओं का सृजन होता रहे। आने वाली पीढ़ी को अगर हम कुछ दे पाएँ जिससे उनके अंदर मानवता बची रहे तो इससे बढ़कर और कुछ नहीं हो सकता। हम खुद सच बोलें और लोगों को सच बोलने के लिए प्रेरित करें। ''हमारा यह समय इसलिए तो इतना खराब हो गया है कि जिन लोगों पर सच बोलने की ज़िम्मेदारी थी उन लोगों ने अपनी जान के डर से सच बोलना ही बंद कर दिया।''

ooo

जुगेश कुमार गुप्ता
शोध छात्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इमेल : jugeshgupta141@gmail.com
मोबाइल : 9369242041

प्रतिभा सिंह

स्वतंत्रता की लड़ाई और विभाजन के पश्चात् देश में एक ऐसे वातावरण का सृजन हुआ जो लोगों को एक दूसरे से भयभीत और असुरक्षित महसूस कराता रहा है। हर व्यक्ति सामने वाले को भय और घृणा की नज़रों से देखता रहा है। विभाजन एक ऐसी घटना है, जिसका प्रभाव अभी तक देश और समाज में व्याप्त है। विभाजन के परिणाम स्वरूप समय-असमय दंगे, आंदोलन, हत्याएँ, हिंसा और बलात्कार जैसी घटनाएँ आम बात हो गई थी। ऐसे समय में कुछ लेखकों और समाज- सुधारकों ने अपने विचारों के माध्यम से समय-समय पर लोगों को जागरूक किया। आजादी के 70 साल बाद भी हमारे देश की स्थिति जैसी की तैसी बनी हुई है। कुछ क्षेत्रों में परिवर्तन और विकास के बाद भी लोगों की मानसिकता आज भी वैसी की वैसी ही है। जहाँ एक ओर हम विकास की ऊँचाइयों पर पहुँच कर चाँद को छू रहे हैं, वहीं दूसरी ओर धर्म के नाम पर एक दूसरे की जान लेने को भी तैयार हैं। ऐसे समय में पंकज सुबीर का उपन्यास 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' प्रासंगिक है। यह एक ऐसा उपन्यास है जो सभी धर्मों के नियमों व मान्यताओं को उजागर करता है। व्यक्ति के इंसान होने को व्याख्यायित करता है। धर्म को परिभाषित करते हुए लेखक कहता है ''विचारों ने मानव जीवन की सारी स्वतंत्रताओं को छीन लिया है। एक इंसान जिस में खुशी पाता है, जिसे करना चाहता है, उस काम को करने से रोकने के लिए विचारधाराएँ, धर्म, परंपराएँ जाने क्या-क्या है जो उसे रोकता है।''

लेखक का उपन्यास 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' एक ऐसी कहानी लेकर चलता है जो दो व्यक्तियों को एक अटूट बंधन में बाँधे रखता है। उस रिश्ते में कभी भी धर्म आड़े नहीं आता है। रामेश्वर एक कोचिंग इंस्टीट्यूट में शिक्षक है। उनके दोस्त शमीम एक मुस्लिम हैं जो अपने बेटे शाहनवाज़ को रामेश्वर को सौंप देते हैं, उसे एक अच्छा इंसान बनाने के लिए। दोस्ती अपने आप ही बहुत सारे अधिकार प्रदान कर देती है। रामेश्वर और शमीम की दोस्ती इसकी मिसाल है।

आरंभ में तो शाहनवाज़ चुपचाप रहता है, परंतु धीरे-धीरे रामेश्वर के व्यक्तित्व व विचारों से प्रभावित होता है और उनसे अपने मन में उठ रहे हर सवालों का जवाब माँगता है जिसे रामेश्वर सहजता से बताते जाते हैं। रामेश्वर का उद्देश्य ऐसे विद्यार्थियों को बनाना है जो धर्म के नाम पर एक दूसरे की जान लेने को तैयार ना हों, बल्कि समय आने पर एक दूसरे का परस्पर सहयोग करें। उनके स्टूडेंट भारत यादव, शाहनवाज़ और विकास ऐसे छात्रों के उदाहरण हैं। ''शिक्षक जब किसी छात्र को शिक्षित करता है तो उसे इस बात का भरोसा होता है कि उसकी संतान भले ही उसकी मदद करने में पीछे हट जाए मगर उसके स्टूडेंट उसका साथ हमेशा देंगे।''

एक दिन अचानक ही ख़ैरपुर बस्ती को लोग चारों तरफ से घेर लेते हैं जो एक मुस्लिम बस्ती है। उसी बस्ती में शाहनवाज़ का भी घर है। शाहनवाज़ की पत्नी हिना जो प्रसव पीड़ा से बेहाल है, परंतु बाहर जाने का कोई रास्ता नहीं है। रामेश्वर अपने बेटे शाहनवाज़ और उसके परिवार को बचाने का हर संभव प्रयास करता है, जिसमें उसके छात्र विकास और भारत यादव सहयोग करते हैं। भारत यादव एक पुलिस अधिकारी के पद पर कार्यरत है।

धर्म के नाम पर हमेशा एक वर्ग, समुदाय और स्त्रियों का शोषण होता रहा है। सारी मान्यताएँ और परंपराएँ स्त्रियों के ऊपर थोप दी जाती हैं। उन्हें धर्म का हवाला देकर कुछ भी करने से रोक दिया जाता है। असल में तो धर्म नाम की इस बला ने अब तक जो भी परेशानी दी हैं, महिलाओं को ही दी हैं। पुरुषों ने तो धर्म नाम की इस व्यवस्था की आड़ में लाभ ही उठाया है। आदिकाल से लेकर वर्तमान समय में भी स्त्रियों को धर्म, राजनीति, युद्ध और हिंसा के माध्यम से प्रताड़ित किया जाता रहा है। कोई भी विकट परिस्थिति आए सबसे पहले स्त्रियों की बलि दी जाती है। धर्म के नाम पर, राजनीति के नाम पर, हमेशा से स्त्रियों को ही कटघरे में खड़ा किया जाता रहा है। आधुनिकता के बाद भी आज भी स्त्रियों की दशा में कोई ज़्यादा सुधार नहीं हुआ है। आज भी स्थिति जैसी की तैसी बनी हुई है। धर्म की सही पहचान न कर लोग केवल धर्म के नाम पर उन्माद पैदा करते हैं। धर्म के नाम पर एक व्यक्ति दूसरे से नफ़रत करता है और उसकी जान लेने पर आमादा रहता है। नफ़रत करने के लिए इंसान कोई न कोई कारण तलाश ही लेता है बस प्रेम करने की ही उसे वजह नहीं मिल पाती है। असल में तो प्रेम के लिए एक ही आवश्यक तत्व है और वह है उत्साह। अनुभव तो प्रेम को समाप्त करने का कार्य करता है। इंसान के अंदर जैसे-जैसे अनुभव आता जाता है वैसे-वैसे उसके अंदर से प्रेम का उत्साह समाप्त होता जाता है। लेकिन जब व्यक्ति के अंदर किसी बात की कट्टरता मन में प्रवेश कर जाती है तो सबसे पहले आदमी के सोचने-समझने की ताकत को ही समाप्त करती है। ख़ैरपुर गाँव को चारों तरफ से घेरने वाली भीड़ इसी बात का उदाहरण है। यह भीड़ सिर्फ लोगों की जान लेने को तैयार है। इस काम में असफलता मिलने पर भीड़ उस बस्ती के लोगों की दुकानें जलाकर अपना क्रोध दिखा रही है। कलेक्टर वरुण कुमार जैसे बुद्धिमान अधिकारी भीड़ को ऐसा करने देते हैं, क्योंकि उनका मानना है कि अपना क्रोध दिखाने और उसको शांत करने के लिए भीड़ को कुछ न कुछ चाहिए उनको रोकने का एकमात्र तरीका यही है।

धर्म के नाम पर जब किसी व्यक्ति को प्रताड़ित किया जाता है तो उस व्यक्ति की स्थिति अत्यंत दयनीय होती है। सलीम अपने परिवार के साथ एक हिंदू बस्ती में रहता है। वह रामेश्वर का पड़ोसी है, परंतु इस स्थिति से वह और उसका परिवार भी भयभीत हैं। रामेश्वर उन्हें हौसला देते हैं और अपने छात्रों को उनकी सुरक्षा और सहायता करने के लिए कहते हैं। कुछ लोग तो इतने स्वार्थी हैं जो दंगा के नाम पर स्वयं के वाहनों और गाड़ियों को आग के हवाले करवाते हैं जिससे उन्हें मुआवज़ा मिले। उन्हें इस बात का ज़रा सा भी ख़याल नहीं है कि लोग दंगा, आंदोलन और आगज़नी से

कितने आतंकित हैं।

लेखक ने बीच-बीच में रामेश्वर के काल को गांधी, जिन्ना और गोडसे से कनेक्ट कराकर उनके विचारों को सहज तरीके से प्रस्तुत किया है। उपन्यास का यह पक्ष पाठक को रोमांचित करता है। लोगों के मन में गांधी, जिन्ना और गोडसे से संबंधित जो सवाल समय-समय पर उभरते हैं उसे लेखक अपने प्रश्नों के माध्यम से व्यक्त करता है। यह उपन्यास भारत विभाजन और उससे उत्पन्न परिस्थितियों में लिखे गए उपन्यासों की अगली कड़ी के रूप में प्रस्तुत है। विभाजन के इतने वर्षों के बाद भी हिंदू और मुसलमानों के बीच आज भी वही आक्रोश व्याप्त है, जो ख़ैरपुर बस्ती को घेरकर आग के हवाले करना चाहता है। विभाजन के बाद कुछ ऐसा रह गया है जो लोगों को आज तक मुक्ति नहीं दे पाया है। इसके बावजूद भी कुछ लोग आज भी रामेश्वर, शाहनवाज़, भारत यादव, अरुण कुमार जैसे हैं जो लोगों को एकता के सूत्र में बाँधे हैं। रामेश्वर जैसे लोग धर्म के ऊपर उठकर किसी व्यक्ति को सबसे पहले एक इंसान मानते हैं और उसकी हर संभव सहायता करते हैं। रामेश्वर एक गाय की हत्या के बदले एक मुसलमान की जान लेने को तैयार नहीं है, और इस बात को एक सिरे से नकारते हैं।

अंत में भारत यादव अपनी पुलिस सहायता से शाहनवाज़ और उसके परिवार को बाहर निकालते हैं और आंदोलन को शांत करते हैं। हॉस्पिटल में शाहनवाज़ की पत्नी हिना एक पुत्र को जन्म देती है जो सारे वातावरण को बदल देता है। रामेश्वर शाहनवाज़ के बेटे का नाम भारत यादव के नाम पर भारत (मोहम्मद भारत ख़ान) रखता है और एक बार फिर से इंसानियत का रिश्ता कायम होता है। कौन लोग होते हैं यह जो हम से खून का कोई भी रिश्ता नहीं होने के बाद भी इतना जुड़ जाते हैं। क्या होते हैं ये संबंध?

मेरा मानना है कि हर व्यक्ति को सभी जातियों और धर्मों से एक-एक ऐसा दोस्त रखना चाहिए जिनके साथ वह ईद-बकरीद, होली-दीवाली मना सकें। मुसलमान दोस्त हिंदू दोस्त के साथ दीवाली के दीए जलाएँ और उनके साथ रंग में सराबोर होकर नाचे गाएँ। अगर ऐसा हो जाए तो हर व्यक्ति अपने आपको अपने दोस्त के साथ सुरक्षित महसूस करेगा। उसे कभी दंगे और आंदोलन भयभीत नहीं कर पाएँगे। ऐसा करके हम अपनी आने वाली पीढ़ी को भी सुरक्षित और भयमुक्त वातावरण दे सकेंगे।

000

प्रतिभा सिंह, शोध छात्रा, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर
ईमेल : singhpratibha2020@gmail.com
मोबाइल : 7080786399

डॉ. रश्मि दुधे

फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के बेहतरीन शेर 'न रहा जुनूने रुख़े वफ़ा, ये रसन ये दार करोगे क्या, जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था वो गुनाहगार चले गए' पर रखा गया इस उपन्यास का शीर्षक बार-बार इस शेर को दोहराता चलता है यानि बार-बार याद दिलाता है कि हम आज जिनकी भूलों की, अदूरदर्शिता की तथा भावनात्मक रूप से लिए गए फ़ैसलों की सज़ा झेल रहे हैं वे गुनाहगार तो जाने कब से चले गए। इस उपन्यास का आरंभ सुलझे और समझदार मुस्लिम और बौद्धिक रूप से सम्पन्न हिन्दू के बीच वार्तालाप से होता है। धर्मों का प्रादुर्भाव और इतिहास के बारे में स्वस्थ प्रश्नोत्तर के माध्यम से पूर्ण यह हिस्सा कुछ ऐसी जानकारियाँ देता है जिसे जानना आज की पीढ़ी की अनिवार्य आवश्यकता है। लगभग सभी धर्मों के जन्म और समय की बात करता हुआ यह उपन्यास ऐसे सच उजागर करता है जो सामान्य वर्ग की ज़द से बाहर है। इस हिस्से को पढ़ते हुए हम अपने पूर्व अध्ययन को अध्यतन करते चलते हैं।

रामेश्वर और शाहनवाज़ की आपसी बातचीत से होकर जब यह उपन्यास क़स्बे पर आता है तो पाठक इन्हीं रिश्तों से कथानक को गुथा हुआ पाता है। सांप्रदायिक दंगों को झेल चुका यह क़स्बा अब तीसरे दंगे के बीच घिर चुका है। उसमें घिरा है रामेश्वर का मानसपुत्र से भी गहरा रिश्ता रखने वाला शाहनवाज़ और उसका परिवार। एक रात का या सही मायने में तीन घंटे का यह उपन्यास अपने आप में ऐसी सशक्त अभिव्यक्ति है जो हमें बार-बार अपने विचारों, घटनाओं, विवरणों, और घटनाओं से हमें चौंकाती है, उद्वेलित करती है। इस उपन्यास को सरल, सहज और प्रवाहमयी भाषा-शैली पाठक को विस्मित करती है। लेखक इतना सजग है कि प्रत्येक घटना के पीछे के सच को गणितीय और वैज्ञानिक दृष्टि से भी देखकर प्रस्तुत करता है। पाठक तक कोई कमज़ोरी नहीं पहुँचने देता। उपन्यास का उद्देश्य बहुत व्यापक है। सांप्रदायिक दंगों के पीछे के कारणों, समाज में फैले विघटनकारी विचार और कलुषित विचारधाराओं की अच्छी पड़ताल इस उपन्यास में की गई है। शाहनवाज़ की चिंता में जब रामेश्वर का फ़ोन कभी गांधी से, कभी गोडसे से, कभी जिन्ना से जुड़ जाता है तो उस वक़्त की लेखक की मानसिक अवस्था और गांधी, जिन्ना, गोडसे से हुए सवाल-जवाब उपन्यास का महत्त्वपूर्ण तथा अहम हिस्सा है। वैसे तो प्रत्येक प्रश्नोत्तर में लेखक की विद्वता परिलक्षित होती है परंतु गांधी, गोडसे और जिन्ना के साथ वार्तालाप सुखद और संतोषप्रद है। यह अपने उद्दात्त क्षणो में एकदम खरा है। यह उपन्यास बहुत सारे अहम् प्रश्न उठता है। इतिहास को कुरेदता है। धर्म और विचारधाराओं को लेकर शोध करता है। भारत-पाक विभाजन के मूल कारणों की पहचान करता नज़र आता है। नई पीढ़ी पर रामेश्वर के माध्यम से ज़रूरी नियंत्रण करता है। अपने आस-पास के पात्रों के बीच संवाद स्थापित करता यह उपन्यास नि:संदेह - इंसान, देश,सरकार, धर्म, समाज, और विचारधाराओं पर प्रश्न उठाकर विघटन के वृक्ष की जड़ों में मठा डालने की माँग करता है। 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क पे नाज़ था' आज के समय में एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है।

000

डॉ. रश्मि दुधे, 79, रेल्वे कॉलोनी, आनंद नगर खंडवा (म.प्र.) 450001,
मोबाइल : 9479432226

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2020
शिवना प्रकाशन की नई पुस्तकें

विचार और समय
सुधा ओम ढींगरा
निबंध

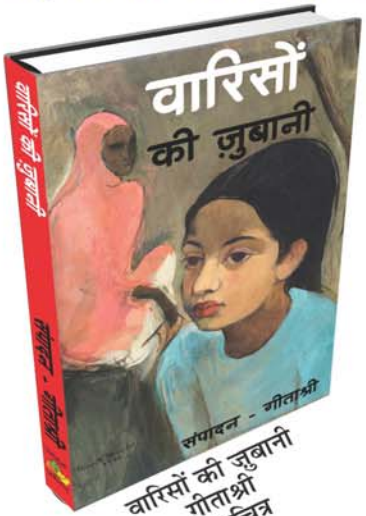

वारिसों की ज़ुबानी
गीताश्री
रेखाचित्र

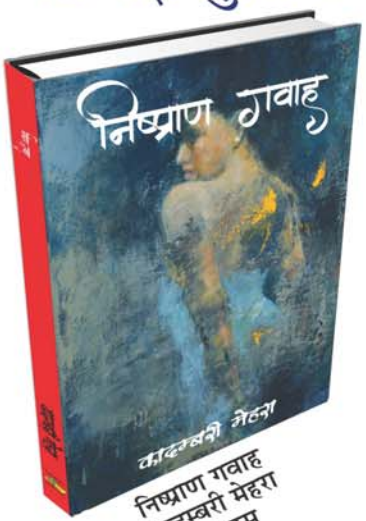

निष्प्राण गवाह
कादम्बरी मेहरा
उपन्यास

निन्यानवे का फेर
ज्योति जैन
लघुकथा

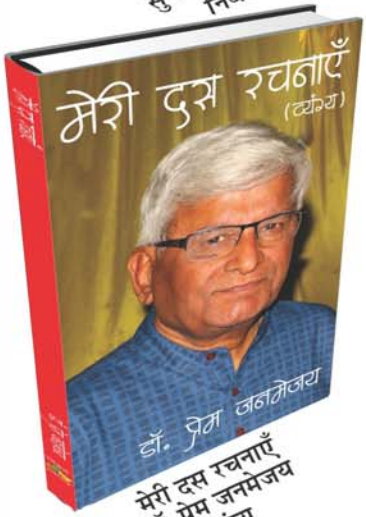

मेरी दस रचनाएँ
डॉ. प्रेम जनमेजय
व्यंग्य

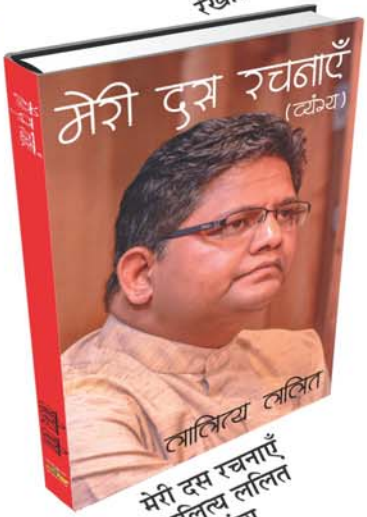

मेरी दस रचनाएँ
लालित्य ललित
व्यंग्य

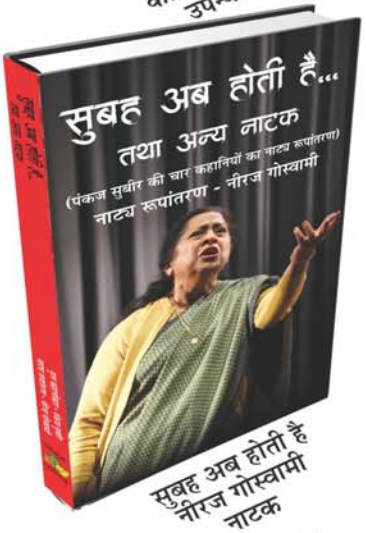

सुबह अब होती है
नीरज गोस्वामी
नाटक

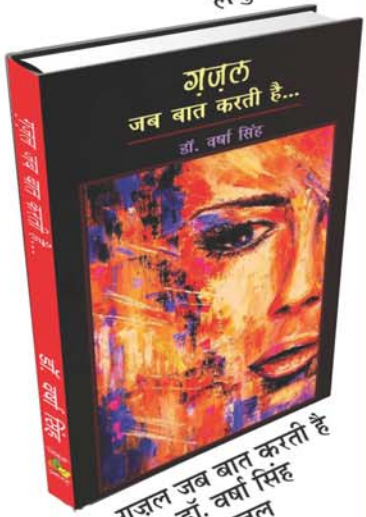

ग़ज़ल जब बात करती है
डॉ. वर्षा सिंह
ग़ज़ल

ख़ुद से गुजरते हुए
संगीता कुजरा टाक
कविता

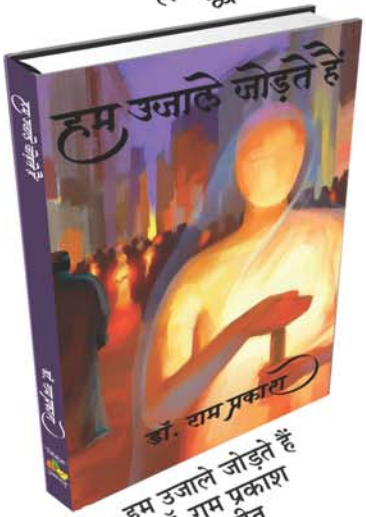

हम उजाले जोड़ते हैं
डॉ. राम प्रकाश
नवगीत

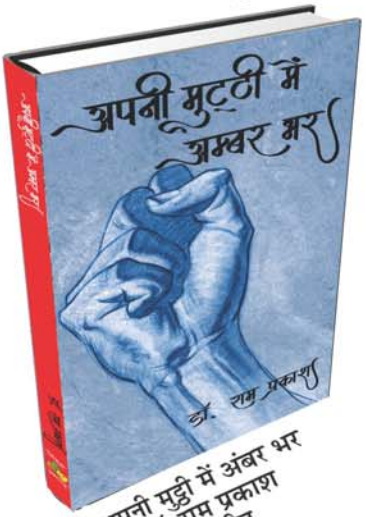

अपनी मुट्ठी में अंबर भर
डॉ. राम प्रकाश
नवगीत

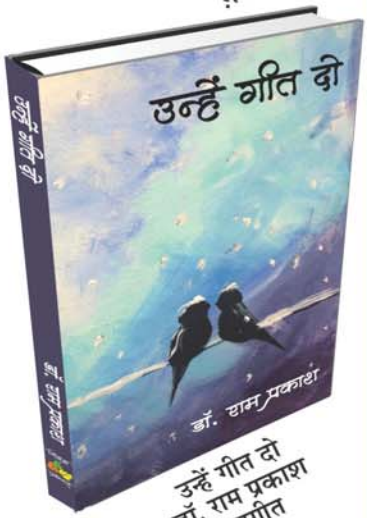

उन्हें गीत दो
डॉ. राम प्रकाश
नवगीत

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
Paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Shivna Sahityiki ● Quarterly ● January-March 2020 ● RNI : MPHIN/2016/67929 ● ISSN : 2455-9717

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षण प्राप्त कर रही बालिकाओं को मार्गदर्शन प्रदान किया दिल्ली से पधारीं ख्यात कथाकार, उपन्यासकार, पत्रकार तथा संपादक गीताश्री जी ने। गीताश्री जी को फ़ाउण्डेशन की ओर से स्मृति चिह्न भी प्रदान किया गया।

सीहोर में चलाए जा रहे निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षण प्राप्त कर रही बालिकाओं को मार्गदर्शन प्रदान किया कैनेडा से पधारे ख्यात व्यंग्यकार, कवि धर्मपाल महेंद्र जैन जी ने। इस अवसर पर श्री जैन को फ़ाउण्डेशन की ओर से सम्मानित भी किया गया।

सीहोर में चलाए जा रहे निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षण प्राप्त कर रही बालिकाओं को सीहोर ज़िला पुलिस तथा दैनिक भास्कर समाचार पत्र की ओर से सायबर क्राइम से बचने संबंधी पुस्तिका अति. पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव ने प्रदान की।

अतिरिक्त एसपी समीर यादव ने बालिकाओं को जरा सी सावधानी की दी जानकारी

भास्कर संवाददाता | सीहोर

बुधवार को बस स्टैंड स्थित पीसी लैब पर एक कार्यशाला कार्यशाला में एडिशनल एसपी समीर यादव और साहित्यकार पंकज सुबीर ने बालिकाओं को कंप्यूटर, इंटरनेट तथा मोबाइल के माध्यम से हो रहे अपराधों के बारे में बताया। श्री यादव ने कहा कि इन दिनों हमारे बारे में सारी जानकारी हमारे स्मार्ट फ़ोन में उपलब्ध रहती है, जिसे यहां से कोई भी प्राप्त कर सकता से सीहोर पुलिस ने दैनिक भास्कर के साथ मिलकर इस पुस्तिका का प्रकाशन किया है, जिसमें सायबर अपराधों के बारे में विस्तार से जानकारी दी गई है। साथ ही उनसे बचने के लिए आवश्यक जरा सी सावधानी के बारे में बताया गया है। इसलिए इसका नाम भी यही है। पंकज सुबीर ने बालिकाओं को

सीहोर में चलाए जा रहे निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षण प्राप्त कर रही बालिकाओं को सायबर क्राइम तथा उससे बचने की जानकारी अनुविभागीय पुलिस अधिकारी सुश्री मंजु चौहान ने प्रदान की।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।